सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-282002 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 45, अंक : 10, जनवरी 2013

अमृत कण

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अर्थात् जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोग के द्वारा मेरा सेवन करता है, वह गुणों को अतिक्रम कर ब्रह्मभाव को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

◆ ◆ ◆

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

(कठोपनिषद् 1/2/24)

अर्थात् प्राणी जब तक दुराचार से निवृत्त नहीं होता, इन्द्रिय दमन नहीं करता और उसका चित्त शान्त नहीं होता, तब तक वह केवल ब्रह्मज्ञान से भी परमात्मा की प्राप्ति नहीं कर सकता।

◆ ◆ ◆

यथा नद्यः स्यन्दमानाःसमुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय।
तथा विद्वान् नाम रुपादविमुक्तः परात् परं पुरुष मुपैति दिव्यम्।।

(मुण्डकोपनिषद् 3/2/8)

जिस प्रकार निरन्तर बहती हुई नदियाँ अपने नाम रूप को त्याग कर समुद्र में लीन हो जाती है, उसी प्रकार विद्वान नाम–रूप से मुक्त होकर परात्पर दिव्य पुरुष को प्राप्त हो जाता है।

◆ ◆ ◆

अनित्यानि शरीराणि विभवोनैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्म संग्रह।।

(चाणक्य नीति)

हमारा शरीर नाशवान है, धन सम्पदा आनी–जानी है सदा रहने वाली नहीं है, मृत्यु हमेशा सिर पर मंडराती रहती है। अतः हमारा कर्तव्य है कि धर्म का संग्रह (आचरण) करें।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 45 जनवरी 2013 अंक : 10

अजानन दाहात्म्यं पततु शलभस्तु तीव्र दहने
स मीनोऽप्यज्ञानाद् बडिशयुतमश्नातु पिशितम्
विजानन्तोऽप्येते वयमिह वियज्जाल जटिलान्
न मुञ्चामः कामानहह ! गहनो मोह महिमा।

(वैराग्यशतक / 18)

शलभ (पतंगा) आग के जलाने के स्वभाव को न जानने के कारण उस में गिरे अर्थात् भले ही जलकर मर जाये। इसी प्रकार वह मत्स्य मालूम न होने से बंसी (कांटा) में लगे हुए माँस को भले ही खा जाने की चेष्टा करें किन्तु इस लोक में विनिपात का कारण विशेष रूप से जानते हुए भी हम लोग विपत्तियों के जाल से कठिन काम–वासनाओं को नहीं छोड़ते। खेद का विषय है, अज्ञान की महिमा गहन है – जानना कठिन है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलो के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	नाद योग – डॉ. जे.पी. शर्मा	8
4.	तुम्हारे गुरुदेव की शक्ति से पूरी सृष्टि थर्राती है	13
5.	श्री गीतामृत पदावली	16
6.	योग-आसन – जानुशिरासन	17
7.	प्रभु कृपा प्रसंग – श्रीमति शशि प्रभा मित्तल	18
8.	गुरु महिमा – श्रीमति वीरमती	20
9.	गुरु स्तुति – मोतीराम गर्ग	21
10.	स्व चिन्तन – राम रतन तिवारी	22
11.	योगयुक्त साधक की अवस्था – डॉ. राजकुमारी त्रिखा	24
12.	अष्टांग योग साधना – प्रो. ऋषिराम शर्मा	29
13.	देह और देही ? – परमहंस स्वामी योगानन्द	32
14.	तेरे दर के सिवा कोई दर – विजय कुमार शर्मा	33
15.	योगेश्वर गम्भीरनाथ जी महाराज की जीवन वृत्त	34
16.	नववर्ष 2013 – द्वारका प्रसाद शर्मा	39

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 150.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

• विशेष लेख

विवेकज ज्ञान की पराकाष्ठा

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने 'सिद्धयोग' के ग्यारहवें वर्ष के प्रथम अंक में योगी को विवेकज ज्ञान नामक लेख में हमने भली प्रकार यह समझाने की चेष्टा की है कि विवेकज ज्ञान की उत्पत्ति किस प्रकार से हुआ करती है। साथ ही लेख में यह समझाया गया है कि क्षण और उसके क्रम में संयम करने से योगी को विवेकज ज्ञान उपलब्ध हो जाता है।

किन्तु इसके अतिरिक्त विवेक ज्ञान में कई एक और भी व्यवधान हैं जो विवेकज ज्ञान में एक प्रकार के अन्तराय ही हैं यह विवेकज ज्ञान को पराकाष्ठा पर नहीं पहुँचने देते। उन सबकी निराकृति के लिए अन्तर्दृष्टा योगी जान लेता है कि यथावत् वस्तु क्या है? जाति, लक्षण, देश आदि की एकता में किस प्रकार योगी अपने संयम के बल से यथार्थता को जान पाता है। इन सब बातों का उल्लेख भगवान पतंजलि जी ने निम्नांकित सूत्र में किया है–

जाति लक्षण देशैरन्यताऽनवच्छेदा तुल्ययोस्तुत: प्रतिपत्ति:।

–विभूति पाद 53

व्यासभाष्य–

तुल्ययोर्देश लक्षणसारूप्ये जातिभेदोऽन्यताया हेतु: गौरियं वडवेयमिति, तुल्यदेशजातीयत्वे लक्षणमन्यत्वकरं, कालाक्षी गौ: स्वस्तिमती गौरिति, द्वयोरामलकयोर्जातिलक्षण सारूप्याद् देशभेदोऽन्यत्वकर इदम्पूर्वमिदमुत्तरमिति, यदा तु पूर्वमामलकमन्यव्यग्रस्यज्ञातुरुत्तरदेश उपावर्त्यते तदा तुल्यदेशत्वे पूर्वमेतदुत्तरमेतदिति अविभागानुपपत्ति:, असादग्धेन च तत्वज्ञानेन भवितव्यमित्यत इदमुक्तंतत: प्रतिपत्ति: विवेकज ज्ञानात् इति कथम्–पूर्वामलक सहक्षणो देश उत्तरामलकसहक्षण देशात्भिन्न:, ते चामलके स्वदेशक्षणानुभवभिन्ने, अन्यदेशक्षणानुभवस्तु तयोरन्यत्वे हेतुरिति, एतेन दृष्टान्तो न परमाणोस्तुल्य जातिलक्षणदेशस्य पूर्वपरमाणुदेशसहक्षण साक्षात्करणादुत्तरस्य परमाणोस्तद्देशानुपपत्तोउत्तरस्य तद्देशानुभवोभिन्न:, सहक्षण भेदात्तयोरीश्वरस्य योगिनोऽन्यत्वप्रत्ययोभवतीति, अपरे तु वर्णयन्ति–येऽन्त्या विशेषास्तेऽन्यताप्रत्ययं कुर्वन्तीति, तत्रापि देशलक्षणभेदो मूर्तिव्यवधि जाति भेदश्चान्यत्वेहेतु: भेदस्तु योगिबुद्धिगम्य एवेति, अत उक्तं मूर्तिव्यवधि जाति, भेदाभावान्नास्ति मूलपृथक्त्वम्, इति वार्षगण्य:।

अर्थात् जहाँ पर देश, जाति और लक्षण समान होते हैं वहाँ पर जाति भेद अन्यता अर्थात् भिन्नता को जानने का कारण होता है। जैसे–यह गौ है और यह घोड़ी है, गौ और घोड़ी

भिन्न–भिन्न जातियों के दो प्राणी हैं, इनका जाति–भेद इनकी भिन्नता को बतलाया है। किन्तु ऐसा होने पर भी जहां पर देश और जाति समान हों वहां पर लक्षणों से भेद को जाना जाता है। जैसे–वह गौ जिसके गले में कुछ चर्म भाग लटक गया है, चर्म भाग का इस प्रकार लटक जाना अन्य गौओं की उसकी भिन्नता का कारण है। इसी प्रकार से देश भेद भी भिन्नता को बतलाने का कारण हुआ करता है। जैसे एक स्थान पर दो आँवले रखे हों उनका रंग–रूप सब समान है किन्तु लाने वाला यह जानता है कि मैं इस आँवले को पूर्व देश से लाया हूँ और दूसरे आँवले को उत्तर देश से लाया हूँ। पूर्व और उत्तर का देश दोनों आँवलों की भिन्नता को बतलाने वाला है। किन्तु लाने वाला व्यक्ति भूल जाय और कोई पूर्व वाले आँवले को उत्तर वाले आंवले की जगह और उत्तर वाले आँवले को पूर्व वाले आँवले की जगह बदल दे तो उस समय सर्व साधारण इस बात को नहीं जान सकते कि कौन सा आँवला पूर्व देश का है और कौन सा आँवला उत्तर देश का है? ऐसी अवस्था में योगी का विवेकज ज्ञान ही उनकी यथार्थता को जानने का कारण बनेगा, क्योंकि उनकी उत्पत्ति काल के क्षण और क्रम जो हैं वह भिन्न–भिन्न हैं। उनके क्षणों और क्रमों के अन्दर संयम करने से योगी यह भली प्रकार जान जायेगा कि यह पूर्व दिशा का आंवला है और यह उत्तर दिशा का आंवला है, क्योंकि यह दोनों आँवले क्षण–क्रम और परमाणुओं के भेद से भिन्न–भिन्न तो हैं ही। इस तत्व को योगी की सूक्ष्म बुद्धि ही निर्णय कर सकती है। क्योंकि योगी के लिए भगवन पतंजलिदेव यह पहले ही कह चुके हैं कि 'परमाणु परम महत्वान्तास्य वशीकारः।' अर्थात् योगी का संयम बल इतना बढ़ जाता है कि वह परमाणु से लेकर के मूल प्रकृति पर्यन्त इसका अधिकार हो जाया करता है। इसी प्रकार विवेकज ज्ञान इतनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है कि योगी को संयम करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, प्रत्युत उसका मन संकल्प मात्र से अपने आप संयमित होने लगता है एवं विवेकज ज्ञान की उत्पत्ति हो जाया करती है। इसी ज्ञान को फिर तारक ज्ञान कहने लग जाया करते हैं। भगवान पतंजलिदेव ने अपने योग दर्शन में निम्नांकित सूत्र में स्पष्ट समझाया है–

तारकं सर्व विषयं सर्वथा विषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्।

(विभूतिपाद 54)

पढ़िये इस सूत्र पर व्यास–भाष्य–

तारकमिति–स्वप्रतिभोत्थमनौपदेशिक मित्यर्थः, सर्वविषयं = नास्य किंचिंदविषयी भूतमित्यर्थः, सर्वथा विषय = अतीतानागत प्रत्युपन्न सर्व सर्वथा जानातीत्यर्थः, अक्रममिति = एकक्षणोपारूढं सर्व सर्वथा गृह्णातीत्यर्थः एतद्विवेकजं ज्ञानं परिपूर्णम्, अस्यैवांशो योगप्रदीपः, मधुमती भूमिमुपादाय यावदस्य परिसमाप्तिरिति।

अर्थात् तारक ज्ञान उसको कहते हैं जिसमें योगी को किसी भी विषय को संयम का लक्ष्य नहीं बनाना पड़ता, उसका ज्ञान संयमित सा ही रहता है, यह ज्ञान इस प्रकार का हुआ करता है जिससे भूत–भविष्य का कोई भी लक्ष्य उसका अविषय नहीं रहता। एक प्रकार से

पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ विवेकज ज्ञान ही तारक ज्ञान में बदल जाया करता है। तारक ज्ञान के उदय हो जाने पर योगी सभी कुछ जानने वाला बन जाया करता है। यह स्थिति इस प्रकार की होती है कि योगी के सामने किसी ने कोई विषय उपस्थित किया और सुनते ही उसने जान लिया। ऐसी स्थिति उपलब्ध होने पर योगी का लौकिकीय भाषा में अन्तर्यामी, जानीजान, घट–घटवासी आदि शब्दों का प्रयोग उसके लिए करने लग जाय करते हैं। यह स्थिति उपलब्ध हो जाने के बाद योगी का सत्व उत्तरोत्तर निर्मल हो जाया करता है और पुरुष अपने आपको केवल भाव में देखने लगता है।

सत्व पुरुषयोः शुद्धि साम्य कैवल्यमिति (विभूतिपाद 55)

व्यास–भाष्य–

सदा निर्द्धूतरजस्तमोमल बुद्धि सत्व पुरुषस्यान्यताप्रत्यय मात्राधिकारं दग्धक्लेशबीजं भवति तदा पुरुषस्य शुद्धिसाम्यत्त्यमिवापन्नं भवति, तदा पुरुष स्योपचरित भोगाभाव शुद्धिः, एतस्याम वस्थायां कैवल्यं भवतीश्वरस्यानीश्वरस्य वा, विवेकज ज्ञान भागिन इतरस्य वा, न हि दग्धक्लेश बीजस्य ज्ञाने पुनरपेक्षा काचिदस्ति, सत्वशुद्धि द्वारेणैतत्समाधिजमैश्वर्यं च ज्ञानन्चोपक्रान्तम्, परमार्थतस्तु ज्ञानाददर्शनं निवर्तते, तस्मिन्निवृत्ते न सन्त्युत्तरे क्लेशाः। क्लेशाभावात्कर्मविपाकाभावः, चरिताधिकारारश्चैतस्याम वस्थायां गुणा न पुरुषस्य पुनर्दृश्यत्वेनोपतिष्ठन्ते, तत्पुरुषस्य कैवल्यम्, तदापुरुषः स्वरूपमात्रज्योतिरमलः केवली भवति।

जब योगी के रज और तम के मल शान्त हो करके बुद्धि सत्व बिल्कुल निर्मल हो जाता है। क्लेश बीज दग्ध हो जाते हैं। दग्धबीजक्लेश होने पर गुणाधिकार समाप्त हो जाता है। तभी प्रकृति और पुरुष का शुद्धिसाम्य उपस्थित होता है। क्लेशबीज के दग्ध हो जाने पर कर्म–विपाक का अभाव हो जाता है, जन्म और मरण का चक्कर छूट जाता है। पुरुष अपने आप को बिल्कुल शुद्ध स्वरूप में देखने लगता है। गुणों का गुणों में अवस्थान हो जाता है। इसी का नाम केवली भाव है। विवेकज ज्ञान की पराकाष्ठा हो जाने पर तारक ज्ञान का उदय और प्रकृति पुरुष का शुद्धि साम्य रूपी निर्मल फल मिलते हैं जिससे योगी अपने आपको कृतार्थ बना लेता है।

●●●

जिसने एक बार असल मिश्रि का स्वाद चखा है, उसे क्या सस्ते गुड़ का स्वाद भाएगा? जो एक बार ऊँची अटारी में सो चुका है, क्या उसे फिर गन्दी झोपड़ी में सोना अच्छा लगेगा? इसी तरह जिसने एक बार ब्रह्मानन्द का स्वाद चखा है, वह क्या कभी तुच्छ विषयानन्द में रममाण हो सकेगा?

– श्री रामकृष्ण परमहंस

नववर्ष मंगलमय हो !

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

प्रिय पाठकगण / गुरुभाई–बहिन,

जय गुरुदेव की।

ईसवी कलेन्डर वर्ष के अनुसार सन् 2012 समाप्त हो चुका है और सन् 2013 का आगमन हो रहा है। हमें अपने अतीत वर्ष की उपलब्धियों पर संतोष करना चाहिए तथा जो त्रुटियाँ रह गई हैं उनमें सुधार करना चाहिए ताकि हम अपने जीवन के हर क्षेत्र में उन्नति कर सकें और उज्जवल भविष्य का निर्माण हो सके। जीवन में श्रेय और प्रेय दो मार्ग हैं श्रेय मार्ग कल्याण एवं मुक्ति का मार्ग है और प्रेय मार्ग संसार एवं भोग का। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि एक मार्ग योग का है और दूसरा भोग का। श्रेय मार्ग पर चलना कठिन अवश्य होता है किन्तु इसका फल अत्यन्त मीठा है। प्रेय मार्ग, भोग मार्ग पहले तो सुखद लगता है किन्तु परिणाम में क्लेश ही देने वाला होता है। मनुष्य की इच्छाओं का कोई अन्त नहीं होता। इच्छा पूर्ति में मनुष्य लगा रहता है भोगों के भोगने में रत रहता है किन्तु योगी भर्तृहरि जी महाराज के वाक्य – 'भोगो न भुक्ता वयमेव भुक्ता' की बात याद रखनी चाहिए। भोगों से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता। एक दिन कलेवर त्याग कर दुनिया से अवश्य विदा हो जाता है। इसलिए विवेकवान व्यक्ति को श्रेय मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिए क्योंकि यही अन्तर्ज्ञान एवं परम शाश्वत शान्ति का मार्ग है।

मनुष्य की आयु निर्धारित है इसी निर्धारित समय में ही कल्याण के लिए प्रयत्न करना होता है। हम लोग प्रतिदिन अपने सगे सम्बन्धी व प्रिय जनों को संसार से विदा होते देख रहे हैं किन्तु फिर भी मृत्यु का भय एवं देहपतन का विचार नहीं आता। यही ईश्वर की माया है, अज्ञान है। गीता में भगवान अर्जुन से कहते हैं – अनित्यमसुखं लोकं इमं प्राप्य भजस्व माम्' अर्थात् यह शरीर अनित्य है तथा दुःखपूर्ण है इसे प्राप्त करके तू मेरा भजन कर। अन्यत्र भी 'दुःखालयमशाश्वतम्' कहकर इसके दुःखपूर्ण एवं अनित्य होने का संकेत दिया है।

भगवान् पतञ्जलि देव ने एक सूत्र दिया है –

'हेयम् दुःखमनागतम्' अर्थात् अनागत, आने वाला जो दुःख है उसका त्याग या परिहार किया जा सकता है। जो दुःख प्रारब्ध बनकर भुगतान में आ गया है वह तो भोगे जा रहे हैं किन्तु जो आगे आने वाला दुःख है उसको हटाया जा सकता है। जो कर्म फल देने के लिए उन्मुख है उन क्लिष्टकर्म के विपाक को न्यून या तनु किया जा सकता है। ध्यान, जाप एवं

गुरुभक्ति से क्लिष्ट कर्म के फल को कम किया जा सकता है यही 'तनूकरण' की प्रक्रिया कहलाती है। दूसरी बात यह भी है जब योग मार्ग में आ गये है तो ऐसी शुभ वृत्ति बनाये रखें जिससे नया क्लिष्टकर्म बने ही नही। हर समय योगनिष्ठ या आत्मनिष्ठ रहने वाले साधक के नये अशुभ कर्म नहीं बनते। भगवान की वाणी है।

'योग संन्यस्त कर्माणं ज्ञान संछिन्न संशयम्' अर्थात् जिसने ध्यान के बल से कर्म एवं कर्मफल को त्याग दिया है उसे अच्छे बुरे कोई कर्म बन्धन में नही डालते।

अतः साधक को प्रमाद व आलस्य का त्याग करके साधना में लगे रहना चाहिए। सतोगुण की उत्तरोत्तर वृद्धि हो जिससे अन्तःप्रकाश हो। आरोग्यता बनी रहे। हमारे गुरुदेव भगवान उन साधकों पर प्रसन्न रहते थे जो कभी बीमार नहीं होते हैं। गुरुदेव का कहना था जो ध्यान, जप एवं आसन करते हैं वह कभी बीमार नहीं हो सकते। इसलिए प्रत्येक साधक को चाहिए कि वह नियमित योग आसन, जीवन तत्वसाधन, षटकर्म एवं प्राणायाम का नित्य अभ्यास करता रहे। व्याधि योग साधना में प्रमुख अन्तराय है। अतः शरीर को स्वस्थ रखना भी हर साधक का नैतिक कर्तव्य है। जाप एवं ध्यान का क्रम निरन्तर चलना चाहिए। पतञ्जलिदेव जी कहते हैं–

स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारासेवितो दृढ़भूमिः

अर्थात् साधना दीर्घकाल तक निरन्तर, तथा आदर पूर्वक, श्रद्धा पूर्वक करने से ही दृढ भूमि युक्त होती है। अस्तु!

हिन्दु धर्मावलम्बियों का नया वर्ष चैत्र शुक्ल पक्ष से प्रारम्भ होता है तभी नवरात्र प्रारम्भ होते हैं।

नया संवत् 2070 का शुभारम्भ होगा। नया वर्ष हम सब के लिए सुखदायी व सब प्रकार से मंगलमय हो ऐसी श्री प्रभुजी के पावन चरणों में प्रार्थना है। प्रभु की अविरल भक्ति का उदय हो और सभी योग मार्ग में आगे निरन्तर बढ़ते रहें।

● ● ●

– एक बार भगवान का नाम सुनते ही जिसके शरीर में रोमांच उत्पन्न होता है और आँखों से प्रेमाश्रु की धार बहने लग जाती है, उसका यह निश्चित ही आखिरी जन्म है।

– विषय सुखों के प्रति आकर्षण कब नष्ट होता है? जब मनुष्य समस्त सुखों के समष्टिस्वरूप, अखण्ड सच्चिदानन्द को प्राप्त कर लेता है, तब। जो उस आनन्दस्वरूप का उपभोग करते हैं, उन्हें संसार के तुच्छ विषयसुखों के प्रति आकर्षण नहीं होता।

– श्री रामकृष्ण परमहंस

नाद योग

डॉ. जे. पी. शर्मा, पॉंटा साहिब, जि. सिरमौर, हि.प्र.

ब्रह्माण्ड सृजन से पूर्व ब्रह्म नितान्त अकेला था। ब्रह्म एकाकी रहते-रहते ऊब गया होगा। इसीलिए उसकी इच्छा जाग्रत हुई कि 'एकोऽहंबहुस्याम्'' अर्थात मैं अकेला हूँ, एक से अनेक हो जाऊँ। इच्छा करने से दबाब पैदा हुआ तथा दबाव से कम्पन हुआ। कम्पन होने से ध्वनिशब्द पैदा हुआ। उसी आदि शब्द को ऋषियों ने प्रणव, ओउम, स्फोट, उदगीत, ध्वनि, **ब्रह्मनाद** आदि शब्दों से कहकर पुकारा। सन्तों ने अपनी वाणी में उसे सार शब्द, सतनाम, सतशब्द, आदिनाम, रामनाम कहा है। यह आदिनाम परम प्रभु परमात्मा से ही उत्पन्न हुए हैं। अत: इनमें परमात्मा तक पहुँचने की शक्तियाँ अन्तर्हित हैं। ध्वनि को नाद कहा जाता है। अत: ब्रह्म की इच्छा से नाद की उत्पत्ति होने के कारण पूर्वजों ने इसे ब्रह्म या नाद कहा है। नाद में ब्रह्म की एकरूपता या एकाकीकरण होने से इसे 'नाद योग' से जाना जाता है। नाद योग सिद्धि प्राप्त करने वाले ईश्वरीय गुणों से ओतप्रोत रहते हैं। उनमें परमात्मभाव जागृत हो जाता है। कई सन्तों ने इसे शब्द साधना या सुरत शब्दयोग के नाम से भी पुकारा है। कबीर साहब ने कहा है –

आदिनाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह।।

आदि नाम स्वाभाविक ही मन की गहराइयों से पैदा हुआ करता है। इसीलिए इसे अनाहत भी बोला जाता है। परंतु आहत शब्द किसी वस्तु से टकराने या ठोकर लगने से ध्वनित होता है तथा उससे असहय पीड़ा या यातनायें हुआ करती हैं। जबकि अनाहतनाद भगवत्प्रेम को दर्शाता है। अनाहत के सम्बन्ध में कबीर साहब ने कहा है –

शब्द शब्द सब कोई कहै, वो तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि कर लेह।।

अत: सन्तों ने सार शब्द अर्थात् आदि नाम को ही ग्रहण करने का संकेत किया है क्योंकि उसके प्राप्त हो जाने से परमात्मा की प्राप्ति निश्चित है।

सन्तों की साधना में नाद योग या शब्दयोग अथवा नादानुसंधान परमात्मा की प्राप्ति का अन्तिम तथा सर्वोत्तम साधन माना गया है। सुरत को अन्तर्नाद में जोड़ने की क्रिया को सुरत-शब्दयोग कहते हैं। मानस जप, मानस ध्यान करने से ज्योतिर्मय बिन्दु पैदा होता है। उस बिन्दु पर ही अन्तर्नाद प्राप्त होता है। मनोनिग्रह के लिए नादानुसंधान सबसे उत्तम योग क्रिया है।

सदा नादानुसंधानात् संक्षीणा वासना तु या।
निरन्जने विलीयेते मनोवायु न संशय:।।

अर्थात् नाद के सतत् अभ्यास से वासना क्षीण हो जाती है। मन तथा प्राणवायु निरंजन में लय हो जाते हैं। किंचित भी संशय नहीं है।

नाद ग्रहण करने पर मन विषयों से सर्वदा के लिए मुक्त हो जाता है। यथा –

मकरन्दं पिबन् भृंगो गन्धान नापेक्षते यथा।

नादासक्तं सदा चित्तं विषये न हि कांक्षति।।

बद्धः सुनादगन्धेन सद्यः संत्यक्तचापलः।

अर्थात् जिस प्रकार मधुमक्खी मधु को पीते हुए उसके सुगन्ध की चिन्ता नहीं करती, उसी प्रकार चित्त भी जब 'नाद' में लीन रहता है, विषय भोगों की कामना नहीं करता। क्योंकि यह चित्त, नाद की मिठास में वशीभूत रहता है। वह अपनी चंचल प्रवृत्ति को त्याग चुका होता है।

नाद का अभ्यास करते–करते मन स्वयं ही एकाग्रता प्राप्त करने लगता है तथा आनन्द के गहरे सागर में गोते लगाने लगता है। विषय वासनाओं को भूल जाता है–

नाद ग्रहणतश्चित्तमन्तरङ्गभुजङ्गमः।

विस्मृत्य विश्वमेकाग्रः कुत्रचिन्न हि धावति।।

अर्थात् नागरूप, चित्तनाद का अभ्यास करते–करते पूर्णरूप से उसमें लीन हो जाता है तथा सभी विषयों को भूलकर नाद में लीन रहता है।

सन्त कबीर ने नादानुसंधान को 'सहजयोग' कहा है। मन को वश में करने के लिये अन्तर्नाद की खोज आवश्यक है –

शब्द खोजि मन बस करै, सहज जोग है येहि।

सन्त शब्द निज सार है, यह तो झूठी देहि।।

शब्द साधना करके जो अपनी चेतनधार को समेट लेते हैं, उनका शरीर प्राण रहते हुए भी मृतकवत् हो जाता है। ऐसे साधक फिर आवागमन के चक्र में नहीं पड़ते। परन्तु जो **शब्द साधना** नहीं, करते वे संसार में भूले रहते हैं तथा बार–बार जन्मते और मरते हैं। श्री गुरुनानक जी ने कहा है –

सबदि मरै तो मरि रहै, फिर मरै न दूजी बार।

सबदै हीते पाइये, हरि नामे लगै पियारु।।

बिनु सबदै जग भूला फिरै, मरि जनमै बारोबार।

अतः शब्द साधन से शरीरस्थ इन्द्रियाँ विषय विमुख होकर शिथिल हो जाती हैं। कामवासना नष्ट हो जाती है। मन की चंचलता रुककर गल जाती है। सांसारिक आशायें मिट जाती हैं। सन्त श्री चरणदास जी महाराज ने बड़ा ही उत्तम कहा है –

''जब से अनहद घोर सुनी, इन्द्री थकित गलित मन हुआ,

आशा सकल भुनी''

कई–कई सन्तों ने नाद योग को मीन मार्ग कहा है। जैसे छोटी मछली नदी के बहाव के प्रतिकूल जल के सहारे चलती है उसी प्रकार साधक नाद के सहारे सृष्टि प्रवाह के प्रतिकूल चलकर परम प्रभु परमात्मा को पाता है। यह नाद प्रवाह या शब्द प्रवाह ऊपर से नीचे की तरफ है। लेकिन जो नाद या शब्द या ध्वनि को ग्रहण करते हैं वे नाद के उदगम की ओर आकृष्ट होते हैं, क्योंकि शब्द में अपने उदगम स्थान की तरफ आकृष्ट करने का गुण होता है। जो आवाज जहाँ से आती है, वह स्वाभाविक रूप से सबको आकर्षित करती है।

स्कूल का घंटा बजते ही सारे विद्यार्थी अपनी–अपनी क्लास में चले जाते हैं। मंदिरों में देवालयों में घण्टे बजते ही सारे श्रद्धालु इकट्ठे हो जाते हैं। घंटनाद से मनुष्य तो देवालयों में पूजा अर्चना हेतु जाते ही हैं अपितु देवालयों में स्वयं देवता अपनी पूजा अर्चना भक्तों की स्वीकारने पहुचते हैं। घण्टे की ध्वनि से कम्पन होता है जो देवों को बुलाने का संकेत मात्र है। उसी प्रकार शंखनाद का महत्व होता है। नाद के साथ देवों तथा परमात्मा के साथ सम्बन्ध जुड़ता है। देवालयों में, मंदिरों में, गिरजाघरों में शंख, घण्टा, झालर आदि बजाने की पुरानी प्रथा है। चैतन्य महाप्रभू परमात्मा की भक्ति के लिए खड़े होकर घण्टों तक दोनों हाथों से तालियाँ बजाया करते थे। मंदिरों में जब भी आरती पूजन होता है तो वहां शंखनाद तथा घड़ियाल के बजने के साथ, पुजारी एक हाथ में छोटी घण्टी बजाते हैं तथा भगवान के स्वरूपों की आरती करते हैं। इन सबका कारण मात्र नाद योग ही है। शंख, घण्टियों आदि की ध्वनि तरंगित होकर झंकृत हो उठती है। उनमें एक अद्भुत नाद उत्पन्न होता है। वह नाद परमात्मा को आने के लिए विवश कर देता है। यही कारण होता है कि वहां भजन, पूजन इत्यादि करने से मन एकाग्र हो जाता है। कभी–कभी लोगों की आकांक्षायें पूरित हो जाया करती हैं। ऐसे देवालयों को प्रायः सिद्ध स्थान या सिद्ध देवालय कहा जाता है।

ब्रह्मनाद या आदिनाम निर्गुण तथा सर्वव्यापक है। सन्तों ने इसे निर्गुण राम नाम भी कहा है। यह आदि नाम साधक को सरलता से प्राप्त नहीं हो पाता। स्थूल मण्डल का केन्द्रिय शब्द ग्रहण करके फिर सूक्ष्म मण्डल के केन्द्रिय शब्द को ग्रहण करते हुए कारण मण्डल के केन्द्रिय शब्द को ग्रहण कर महाकारण मण्डल के केन्द्र पर जो शब्द ग्रहण होगा, वही सार शब्द है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण मण्डल तक सत्व, रज, तम का विस्तार है। इसलिए इन मण्डलों के शब्द सगुण ही सगुण होंगे। इन चारों मण्डलों के परे जो नाद प्राप्त होगा, वही निर्गुण रामनाम है।

शब्द साधना के पूर्व बिन्दु ध्यान, आवश्यक है। दृष्टियोग करने पर जो ज्योतिर्मय बिन्दु उदित होता है, उस पर नाद स्वाभाविक ही स्थित रहता है। इसीलिए जो दृष्टियोग करके बिन्दु को प्राप्त करते हैं, उनको अन्तर्नाद सहज ही प्राप्त होता है।

बिन्दुपीठं विनिर्भिद्य नादलिङ्गमुपस्थितम्।।

अर्थात् बिन्दुपीठ का भेदन करके नादलिङ्ग उपस्थित होता है। ज्योतिर्मय बिन्दु सूक्ष्म

होता है। किसी भी अक्षर के लिखने के पूर्व बिन्दु बनता है तभी वह अक्षर लिखा जाता है। बिन्दु को बीजाक्षर कहा गया है –

बीजाक्षरं परं बिन्दु नादं तस्योपरि स्थितम्।

सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

अर्थात् परम बिन्दु ही बीजाक्षर है। उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (अविनाशी) ब्रह्म में लय हो जाता है, तो निःशब्द परम पद कहलाता है।

सन्त पलटूसाहब कहते हैं कि जो बहिर्वृत्ति को छोड़ कर अन्तर्मुखी साधना करते हैं, वे ज्योतिर्मय बिन्दु को पा जाते हैं, जिस पर नाद ध्वनि हो रही है।

बिन्दु में नाद का मेला, उलटिके खेल यह खेला।

बिन्दु में तहं नाद बोले, रैन दिवस सुहावन।।

पूज्य परम हंस जी महाराज ने कहा है –

धर कर बिन्द सुनो अनहद ध्वनि।

विविध भांतिकी होती पुनि पुनि।।

प्रकृति भी संकेत करती है कि ज्योति के बाद शब्द अवश्य होता है। जैसे आकाश में बादल टकराते हैं तो पहले बिजली की चमक होती है तत्पश्चात् बादलों की गड़गड़ाहट की आवाज आती है। उसी प्रकार साधक जब साधना करके प्रकाशमण्डल में पहुंचते हैं तो वहां उन्हें शब्द भी अवश्य मिलता है। गुरु नानक देव जी महाराज ने कहा कि सुषुम्ना में शून्य का ध्यान करके नाद ग्रहण करना चाहिए –

सुखमन कै घरि राग सुनि सुन मण्डल लिव लाय।

अकथ कथा बिचारियै मनसा मनहि समाय।।

आदि नाद ही सृष्टि का मूल कारण है। यदि शब्द (नाद) न रहे तो सृष्टि नहीं रहेगी। अन्तर्नाद का सुनना बाह्यकान से नहीं हो सकता। क्योंकि नाद अति सूक्ष्म होता है। वह अन्तर्इन्द्रिय से ही प्रकाशित है।

अनहद नाद को उलटा नाम भी कहा गया है। इसका प्रवाह ब्रह्माण्ड से पिण्ड की ओर अर्थात् ऊपर से नीचे ओर है। जपकाल में वर्णात्मक नाम का जब उच्चारण होता है तो वह नीचे से अर्थात् नाभिमण्डल से प्रवाहित होकर मुंह से निकलता है। इसी कारण इसे सीधा और ध्वन्यात्मक रामनाम को उल्टा कहा गया है। वर्णात्मक नाम सगुण होता है। लेकिन ध्वन्यात्मक नाम अर्थात् आदि नाम निर्गुण होता है। इसी अनुपम और गुणनिधान निर्गुण रामनाम की वन्दना गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने अपने रामचरित मानस के बालकाण्ड में की है –

बन्दउँ नाम राम रघुबर को, हेतु कृसानु भानु हिमकरको।

बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो।।

श्री गोस्वामी जी ने निर्गुण राम नाम को ब्रह्म, विष्णु, और महेश तथा वेद का प्राण अर्थात् 'औंकार' (प्रणव) कहा है। सुरत शब्द योग की साधना द्वारा साधक माया के सारे आवरणों, अन्धकार, प्रकाश और शब्द अथवा स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और कैवल्य को पारकर परम प्रभु परमात्मा से एकता का बोध कर पायेंगे। इसके लिए सच्चे, हितैषी, नाद योग के पारंगत सद्गुरु से शब्दाभ्यास की शिक्षा लेनी चाहिए।

अन्तर्नाद सुनने के लिए साधक को ''कैवल्य प्राणायाम'' का अभ्यासी होना अति आवश्यक है। प्राणों के स्तम्भन की आवश्यकता नाद सुनने में महत्वपूर्ण रहती है। लम्बे समय के अभ्यास से प्राणायाम सिद्ध किया जा सकता है। परन्तु गृहस्थी, रोगी, उच्च तथा निम्न रक्तचाप से पीड़ित, हृदय रोगी, श्वास, दमा के रोगी इससे दूर रहे। नाद सुनने की विधि इस प्रकार है–

पद्मासन अथवा सुखासन में साधक सीधे निश्चल बैठ जायें। दोनों हाथों के अँगूठे से कानबन्द करें। तर्जनी अंगुलियों से दोनों आँखे, मध्यमाअँगुलियों से दोनों नासाद्वार, अनामिकाओं से मुँह तथा कनिष्का अँगुलिया ठोड़ी पर टिका दें। प्राणायाम शुरु करने से पहिले रेचन क्रिया द्वारा शरीर के अन्दर की वायु को बाहर निकाल दें। धीरे–धीरे प्राणों का स्तम्भन करें। कुछ समय के अभ्यास से अन्दर की आवाज विभिन्न रूपों में सुनाई देगी, उसे सुनने का प्रयत्न करें। ऐसा करने से मन शान्त होता चला जायगा। सावधानी की अति आवश्यकता है। दम घुटने पर अभ्यास तुरन्त छोड़ दें। कैवल्य प्राणायाम के अभ्यासी ही नाद सुनने में सफल हो सकते है। मेरे सद्गुरु देव सभी का कल्याण करें।

पूज्य सद्गुरु योग योगेश्वर अनन्त, मेरे भाग्यविधाता श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के पावन कमल चरणों में सादर साष्टांग प्रणाम्। सभी गुरुभाइयों को सादर जयगुरुदेव!

● ● ●

– रेल का इंजन स्वयं आगे बढ़ते हुए अपने साथ आसानी से कितने ही माल से भरे डिब्बे को खींच ले जाता है। इसी तरह ईश्वर के विश्वासी भक्त, सिर पर संसार के दुःख–कष्टों का बोझ होते हुए भी ईश्वर पर दृढ़ विश्वास और भक्ति रखकर भवसागर से आसानी से पार हो जाते हैं। इतना ही नहीं, वे अपने साथ और भी अनेकों को ईश्वर की ओर ले जाते हैं।

– यदि साधक को कोई दुष्ट स्त्री अपने मोहजाल में फँसा ले तो क्या होगा? जिस प्रकार पके आम को जोर से दबाने पर गुठली और गुदा फट से निकलकर दूर छिटक जाता है, हाथ में केवल छिलका ही रह जाता है, उसी प्रकार ऐसी स्त्री के हाथ पड़ते ही साधक का मन झट ईश्वर में चल जाता है, देह भर पड़ी रह जाती है।

– श्री रामकृष्ण परमहंस

तुम्हारे गुरुदेव की शक्ति से पूरी सृष्टि थर्राती है

(एक शक्तिशाली तांत्रिक का कथन)

प्रस्तुत कृपा प्रसंग एक योगी साधक दम्पति श्री लाल जी पाण्डेय एवं श्रीमती आशा पाण्डेय से संबंधित है। ये दम्पति मूल रूप से कानपुर देहात क्षेत्र के निवासी हैं, जो कानपुर शहर से मात्र तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इनका एक पड़ोसी इनसे अकारण ईर्ष्या करता था तथा इनकी उन्नति देख कर जला करता था। सम्भवतः सन् दो हजार चार-पाँच में ये श्री सिद्धयोग दरबार से जुड़े। दीक्षा के बाद इस दम्पति ने योगेश्वर द्वय का विधिवत् आरती पूजन आरम्भ कर दिया तथा इसके साथ ही नियमित मंत्र जप एवं ध्यानाभ्यास करना शुरू कर दिये। परिणामस्वरूप आध्यात्मिक प्रगति के साथ ही इनके लौकिक कार्य भी अलौकिक प्रकार से सफलता को प्राप्त होने लगे। इनकी लौकिक प्रगति इनके पड़ोसी को परेशान करने लगी। उसने अपने हितैषियों से परामर्श किया कि पाण्डेय जी का गुरु बड़ा ही शक्तिशली है, मैं उनसे तो मंत्र नहीं ले सकता, परन्तु एक ऐसे गुरु का शिष्य बनूँगा जो हर मामले में उनके गुरु से बीस पड़े। काफी खोजबीन एवं जाँच परखकर उसने उस इलाके के एक सिद्धि प्राप्त तांत्रिक को अपना गुरु बना लिया एवं उस तांत्रिक से पहली प्रार्थना यही की, कि हमारे पड़ोसी श्री लाल जी पाण्डेय की पत्नी हरदम अपने श्री गुरुदेव की कृपाओं एवं शक्तियों का बखान किया करती है। "क्या सही है और क्या गलत इसे तो आप जानते होंगे परन्तु एक बात जो देखने में सही लगती है वह यह है कि उसकी प्रगति बहुत हो रही है एवं जो भी कार्य ये सब करते हैं, उससे सफलता ही सफलता मिलती है। हमारा काम बने या बिगड़े, आप उसका कार्य अवश्य असफल कर देने की कृपा करें।" अपने इस शिष्य दम्पत्ति की प्रार्थना को उस तांत्रिक ने पूरा करने का मन बना लिया एवं उनसे बोला कि तुम अपना कार्य हुआ समझो। उसने अपना शुभ मुहुर्त देखकर साधक श्री लाल जी पाण्डेय की धर्मपत्नी श्रीमती आशा पाण्डेय जी पर तांत्रिक क्रिया कर दी एवं अपने शिष्य (श्री लाल जी पाण्डेय का पड़ोसी) से कहा कि सत्रह जनवरी दो हजार सात को तुम्हारे शत्रु पाण्डेय की पत्नी परलोक सिधार जायेगी। सिद्धियुक्त तांत्रिक ने अठारह नवम्बर सन् दो हजार छः को उस दम्पत्ति को अपना शिष्य बनाया था एवं उसके नब्बे दिन के अन्दर श्रीमती आशा पाण्डेय जी की मृत्यु होने की घोषणा कर दी। श्रीमती आशा पाण्डेय जी की तबियत अचानक खराब हो गयी एवं उन्हें चौबीस घण्टे में बीसियों दस्त होने आरम्भ हो गये। उस समय पाण्डेय जी की नौकरी वाराणसी में थी। अपनी पत्नी का समुचित इलाज कराने के लिए वे पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर कानपुर आ गये। अनेक वैद्य, हकीम एवं डॉक्टरों से इन्होंने इलाज कराया परंतु रोग की तीव्रता पर कोई असर नहीं हुआ। इन्होंने करीब ढाई महिने तक उपचार कराया परंतु रोग पर रंचमात्र भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा एवं इनकी पत्नी का शरीर मात्र नरकंकाल की तरह शेष रह गया।

उपरोक्त अवधि में इनसे जो भी मिलता उससे अपनी पत्नी की बीमारी के संबंध में अवश्य बतलाते एवं उससे कहते कि पत्नी की बीमारी के कारण मैं आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक रूप से परेशान हूँ। इस समय हमारी सहायता करने वाला कोई नहीं है। इसी समय इनकी मुलाकात इनके एक मित्र से वाराणसी में हुई जो एक तांत्रिक का दोस्त था। उसने इनसे कहा कि "एक हमारा मित्र तांत्रिक है। आप उसके पास हमारे साथ चलें एवं उससे इस संबंध में प्रार्थना की जाय।" दोनों लोग प्रात: सात बजे ही तांत्रिक के पास पहुँच गये एवं श्रीमती आशा पाण्डेय के रोग निवारणार्थ प्रार्थना किये। उस तांत्रिक ने कहा कि हमारी पूजा का समय तो अर्धरात्रि में है, अत: आप रोगी के संबंध में अमुक–अमुक बातें बतला दें एवं कल प्रात:काल आयें तो मैं इस संबंध में आपको बतलाऊंगा। इन लोगों ने वैसा ही किया एवं फिर दूसरे दिन प्रात: काल उसके घर पहुँच गये। तांत्रिक ने जो बतलाया वह सूचना बहुत ही भयावह एवं खतरनाक थी। उसने बतलाया कि "आपकी पत्नी पर विशेष मारण मंत्र का प्रयोग किया गया है। जिसके प्रभाव से उसका शरीर क्षीण होता जायेगा एवं सत्रह जनवरी को उसका प्राणान्त हो जायेगा।" उससे जब इनके उपचार की प्रार्थना की गयी तो उसने कहा कि "आपके साथ आने वाले हमारे जिगरी दोस्त हैं, अत: मैं असत्य बात नहीं करूंगा। उसका उपचार हमारे बस में नहीं है, परंतु यह बात शत प्रतिशत सत्य है कि श्रीमती आशा पाण्डेय की मृत्यु सत्रह जनवरी को रात्रि के बारह बजे से पूर्व अवश्य–अवश्य हो जायेगी।" उस समय सत्रह जनवरी आने में मात्र दो सप्ताह का समय शेष था। ये उसी समय अपनी पत्नी की मृत्यु से किसी भी प्रकार रक्षा करने हेतु छुट्टी लेकर कानपुर आ गये। यहाँ आकर इन्होंने अनेक तांत्रिकों एवं अन्य मंत्र सिद्ध लोगों से मिलकर अपनी धर्मपत्नी के रोग के निवारणार्थ प्रार्थना एवं प्रयत्न किया परंतु कोई भी लाभ नहीं हुआ।

इस संबंध में जब इन्होंने अपने एक रिश्तेदार को बतलाया जिन्हें हनुमान जी की सिद्धि है तो उन्होंने कहा कि "इस प्रकार के कार्य मैं नहीं करता परंतु कल (अगले दिन) आइये तो मैं आपको विधिवत् बतला दूंगा।" दूसरे दिन श्री लाल जी पाण्डेय उनके घर गये तो उन्होंने कहा कि आपकी पत्नी की मृत्यु सत्रह तारीख को होनी थी परंतु अब नहीं होगी। मैं आपके घर चलता हूँ। यह घटना तेरह जनवरी दो हजार सात की है। उन्होंने पूजा का सामान मंगाया एवं इनकी मकान की नींव के पास गाड़े गये तांत्रिक पोटली को निकाला एवं उसे आग जलाकर राख कर दिया। उन्होंने पाण्डेय जी को बतलाया कि "अब आज से ही आपकी पत्नी ठीक होना आरम्भ हो जायेगी। आपके पड़ोसी का नुकसान करने की भावना मेरी बिल्कुल नहीं है परंतु सत्रह जनवरी को आपके पड़ोसी के घर कोई न कोई महान अमंगल होगा।" सत्रह जनवरी को इनका पड़ोसी बाजार से सामान लेकर सड़क की पटरी पर धीरे–धीरे चलकर घर आ रहा था कि किसी वाहन ने जोर से धक्का मारा एवं इनके पड़ोसी के, जो मुँह के बल गिरा था, चेहरे का हुलिया ही बदल गया। उसके मुँह के सामने के ऊपर एवं नीचे दोनों तरफ के दाँत टूट गये तथा लगी हुई चोट ठीक होने के बाद भी उसका चेहरा भयानक ही दिखाई देता है।

इनके उस रिश्तेदार पर बजरंगबली का आवेश आता है। अमंगल की उपरोक्त भविष्यवाणी करने के बाद उसने कहा ''जानते हो, तुम्हें क्यों इतना कष्ट झेलना पड़ा। केवल इसलिए कि तुमको अपने श्री गुरुदेव पर विश्वास नहीं है, अतः तुमने उनसे कष्ट निवारण के लिए प्रार्थना ही नहीं किया।' इनके रिश्तेदार ने बजरंगबली के आवेश में ही आगे कहा कि तुम्हारे घर में तो जिन देवताओं का स्वरूप विराजमान है, उनकी शक्ति से तो सम्पूर्ण सृष्टि काँपती है। इन योगेश्वरों के अखण्ड आध्यात्मिक प्रकाश की कोई सीमा नहीं है। इनका प्रकाश अखण्ड मण्डलाकार है। अतः तुम लोग किसी देवी देवता के चक्कर में न पड़कर घर में ही स्थित देवताओं का पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ आरती पूजन किया करो। उसके द्वारा प्रकाश के उद्‌बोधन से इन लोगों के अन्दर अपने योगेश्वर द्वय के प्रति सच्ची प्रीति जगी एवं इन लोगों को विश्वास हो गया कि हमारे श्री गुरुदेव भगवान एवं दादा गुरुदेव महाप्रभु जी लौकिक या परलौकिक सभी कार्य के लिए पूर्ण रूप से सामर्थ्यवान हैं। इन लोगों ने अब नये विश्वास के साथ आरती पूजन, मंत्रजप एवं ध्यान करना आरम्भ कर दिया।

इनके पड़ोसी के मन में श्री पाण्डेय जी से बदला लेने की भावना समाप्त नहीं हुई थी। उसने अपने तांत्रिक गुरुदेव से प्रार्थना किया कि ''महाराज जी इसे ऐसा दर्द दे दो कि यह जिन्दगी भर असह्य पीड़ा झेलता रहे।'' उसने तांत्रिक विद्या से इनके पीठ में शूल (वातरोग) पैदा कर दिया। अब जब भी ये श्वांस लेते या छोड़ते थे इन्हें महान कष्ट होना आरम्भ हो गया। उसी दिन रात्रि में इन्होंने अखण्ड ज्योति बनाकर आरती पूजन किया एवं उपवास रखकर सपत्नीक पूरी रात अपने गुरुमंत्र का जप किया। प्रातःकाल लगभग तीन बजे इन्हें तन्द्रा सी आयी और इन्होंने देखा कि श्री गुरुदेव भगवान इनके पीठ से एक जलती हुई लाल लोहे की लगभग एक फुट लम्बी छड़ निकाल कर एक दूसरे व्यक्ति की पीठ में डाल दिये। इनका असह्य दर्द उसी समय समाप्त हो गया। श्री पाण्डेय जी उस समय तक स्थानान्तरित होकर कानपुर में ही आ गये थे। श्री पाण्डेय जी उस तांत्रिक को नहीं जानते थे परंतु वह तांत्रिक इनके और इनके परिवार के संबंध में खूब अच्छी जानकारी रखता था। वह अगले ही दिन दोनों हाथ से अपनी कमर पकड़े, कराहते हुए इनके पास आया और निवेदन किया कि ''हमारा कष्ट दूर करने की कृपा की जाय।'' इन्होंने बड़ी ही शालीनता एवं विनम्रता से कहा कि 'ठाकुर साहब! आप तो महान शक्ति सम्पन्न व्यक्ति हैं, मैं तो कुछ भी नहीं जानता।' उसने लाख प्रयत्न किया परंतु उसका शूल का दर्द पूर्ण रूप से हटा नहीं। हाँ, उसका कष्ट कुछ कम अवश्य हो गया। उस कष्ट को वह आज भी झेल रहा है। साथ ही इस सिद्धयोग दरबार से जुड़ने वाले हमारे पाण्डेय दम्पत्ति का पूरा परिवार सानन्द जीवनयापन कर रहा है। यह कृपा प्रसंग अब समाप्त हुआ। अब हम सभी गुरुभाई बहनों के लिए यही शिक्षाप्रद है कि –

हरदम है तैयार तू पाप कमाने के लिए।
नियमित समय निकाल प्रभु गुण गाने के लिए।।

श्री गीतामृत पदावली

लेखक – राम प्रकाश गुप्ता, हल्द्वानी
प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

अध्याय 18

अर्जुन उवाच

त्याग तथा संन्यास, तत्त्व है दोनों का क्या मधुसूदन।
मुझे जानने की इच्छा है पृथक्–पृथक्, हे यदुनन्दन।। 1।।

श्री भगवानुवाच

काम्य कर्म सब तज देने को ज्ञानी जन कहते 'संन्यास'।
तथा 'त्याग' तजने को कहते कर्मों के फल की सब आस।। 2।।

दोष–युक्त हैं कर्म, अतः ज्ञानी बतलाते इनका त्याग।
कुछ कहते हैं, उचित न तजना दान, तपस्या अथवा योग।। 3।।

अब इस–त्याग विषय में, अर्जुन! मेरा भी तुम सुनो विचार।
पुरुषश्रेष्ठ, हे वीर धनंजय! इसके होते तीन प्रकार।। 4।।

तजना कभी न इन कर्मों को, करना सदा यज्ञ, तप, दान।
ज्ञानी को भी पावन करते है अर्जुन यह सब तू जान।। 5।।

तज करके आसक्ति, फलेच्छा ये सब कर्म सदा करना।
यह विचार सर्वोत्तम मेरा सदा पार्थ! मन में रखना।। 6।।

●●●

(क्रमशः)

जिस प्रकार कसौटी पर घिसते ही सोना और पीतल का भेद खुल जाता है, उसी प्रकार दुःख–क्लेश और विपदाओं में पड़ने पर सच्चे साधु और पाखण्डी का भेद खुल जाता है।

– श्री रामकृष्ण परमहंस

स्वास्थ्य

योग-आसन

जानुशिरासन

यह आसन महामुद्रा की प्रतिकृति है। महामुद्रा में ठोड़ी छाती से लगा कर जालन्धर बन्ध साथ में लगाया जाता है, और साथ में प्राणायाम की भी विधि महामुद्रा के साथ-साथ है, महामुद्रा बहुत ही लाभकारी मुद्रा है, किन्तु क्योंकि उसका वर्णन सभी योगाचार्यों ने मुद्राओं में किया है। अतः उसका वर्णन पूर्ण विधि से मुद्राओं में ही किया जायेगा।

विधि– सम सूत्रता से बैठ जाइये। सीधे बैठकर अपने एक पैर को अपनी जंघा के साथ सटा कर उसकी एड़ी योनिस्थान लिंग नाल के नीचे लगाये रखिये, दूसरे पैर को सामने की ओर लम्बा फैलाकर उस पैर का अँगूठा या सम्भव हो सके तो पूरा पंजा ही पकड़ लीजिये, फैला हुआ पैर जमीन के साथ बिल्कुल सटा रहे, इसके बाद पैर के पंजे को ऊपर की ओर तनाव के साथ खींचते हुए अपना मस्तक घुटने पर लगा दें। इसी प्रकार इस पैर को बदल कर पहले पैर की तरह जंघा पर जमाकर व दूसरे पैर को फैलाकर उसके भी अँगूठे या पंजे को पकड़ कर तनाव के साथ ऊपर की ओर खींचते हुए अपने मस्तक को घुटने पर लगा दें, इसी का नाम जानुशिरासन है, दोनों पैरों को बदल-बदल कर करना चाहिए, जितना पहले पैर से किया हो उतना ही दूसरे पैर से भी जरूर करें तभी आसन पूर्ण होगा।

करने का समय– इस आसन के करने में हर व्यक्ति को पहले-पहले कुछ कठिनता होती है। किन्तु अभ्यास से धीरे-धीरे अवश्य ही बन जायेगा। प्रथमाभ्यास में इस आसन को 15 या 20 सैकेन्ड से शुरू करें व प्रतिदिन 4 या 5 सैकन्ड बढ़ाते हुए 2 मिनट तक बढ़ा लें तो उत्तम रहेगा। शरीर के बलाबल को देखकर शनैः शनैः और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है।

लाभ– शरीर में दृढ़ता देता है। वात रोग नाशक है, यकृत एवं प्लीहा की बीमारियों को पूरा-पूरा लाभ पहुँचाता है। आँतों को सबल बनाता है। कोष्ठबद्धता दूर होकर जठराग्नि बढ़ती है, भूख खूब लगती है। यकृत पर पूरा-पूरा प्रभाव पड़ने पर रक्त शुद्ध होता है। श्वास में लाभप्रद है। वीर्य रक्षा के लिए श्रेयस्कर एवं स्तम्भक है। ● ● ●

जानुशिरासन

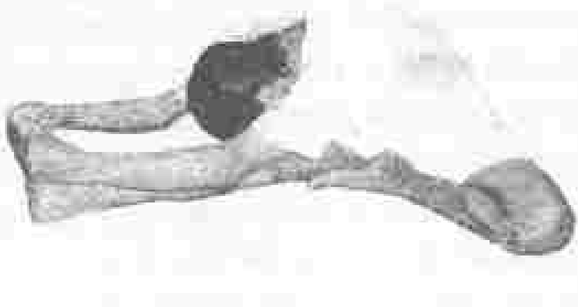

प्रभु कृपा प्रसंग

– श्रीमति शशि प्रभा मित्तल, हरिद्वार

घटना जुलाई 2010 की है मैं कनखल से हरिद्वार हमारे एक परिचित ज्योतिषाचार्य से हवन करवाने हेतु मिलने गयी तो मैंने अपनी जन्मपत्री उनको दिखाई। जन्मपत्री देखकर वह बोले की राहु की दशा के कारण तुम्हारे दायें पैर की हड्डी टूटने वाली है। उस पर मैंने उनसे इसका उपचार करने का आग्रह किया लेकिन उन्होंने कहा कि अगर जून के प्रथम सप्ताह में जब आप आई थी, तभी अगर जन्मपत्री दिखाई जाती तो इसका उपचार सम्भव था। अब तो जो आप करती हो करती रहो।

अगले ही दिन मेरे एक परिचित जिनका जून के प्रथम सप्ताह में एक्सीडेंट हो गया था, उनसे मिलने हेतु उनके घर गयी, उन परिचित के पालतू कुत्ते ने मुझे अपने सिर द्वारा गिरा दिया। सभी घरवालों ने मुझे उठाकर पास में ही पड़े तख्त पर लिटा दिया क्योंकि मैं उठ नहीं सकती थी। परंतु मुझे दर्द बिल्कुल नहीं था। सभी घरवाले बाम आदि से उपचार करने लगे और यह अनुमान लगाने लगे कि हड्डी नहीं टूटी है क्योंकि मुझे पैर में कोई सूजन या दर्द नहीं था और प्रभु जी की विशेष कृपावश मैंने करवट भी बदल ली थी। अगले दिन दिल्ली से मेरी बेटी (मीनाक्षी) और उसका पुत्र (अंकित) सुबह कनखल के द्वारा पहुंच गये। पड़ोसियों के कहने पर मेरे एक्सरे कराया गया जिससे मेरे दायें पैर की हड्डी टूट कर दूसरी हड्डी पर चढ़ी हुई थी। इस पर डाक्टर ने लकड़ी की पट्टी द्वारा मुझे प्राथमिक चिकित्सा दी और हम लोग दिल्ली शाम को 6 बजे पहुंचकर बसन्तकुंज के फोर्टिस अस्पताल में पहुंचकर मुझे भर्ती कराया गया। प्रभुजी की विशेष कृपा रही कि मेरे शुगर, ब्लड प्रेशर इत्यादि टेस्ट बिल्कुल सामान्य आये इस कारण अगले दिन ही मेरे पैर का आपरेशन होना निश्चित हुआ।

प्रातःकाल जिस डॉक्टर को मेरा आपरेशन करना था वह भी प्रभु जी की कृपा से मेरे पास आकर मुझे सांत्वना देने लगे उसके बाद लगभग दोपहर 12:30 बजे मुझे आपरेशन थियेटर में ले जाया गया। उसके पहले एक छोटे से रूम में वही डॉक्टर हरे रंग की पट्टी अपने मुख पर लगाई हुई थी, आकर अपना मुँह दिखाकर मुझसे कहने लगा कि अम्मा मैं वही सुबह वाला डॉक्टर हूँ जिसे आपका आपरेशन करना है और स्वयं ही मेरी व्हील चेयर को चलाते हुए आपरेशन थियेटर में ले आया और काफी देर तक वह डॉक्टर मुझे बड़े प्रेम से ढांढस बंधाता रहा तब मैंने कहा कि मेरा बच्चा मेरा आपरेशन कर रहा है। इससे बड़ा भाग्य क्या हो सकता है? मेरी रीढ़ की हड्डी में तीन इंजेक्शन दूसरे डॉक्टरों के द्वारा लगाये गये और मैं तुरन्त ही ध्यानस्थ हो गयी और तभी मैंने देखा की वो करुणानिधान, दया के सागर, लम्बी जटाधारी, गौर वर्ण लम्बा शरीर तेजोमय स्वरूप में महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने दर्शन दिये और

दर्शन पाकर मन आश्वस्त हो गया और महाप्रभु जी ने डॉक्टर का स्थान खुद लेकर व डॉक्टर को अपना सहायक बनाकर उनसे ऑपरेशन करने के लिए औजार लेने लगे व खुद ऑपरेशन करने लगे जिससे इस दृश्य को देखकर मेरे मन में काफी तसल्ली हुई और ऑपरेशन 2:30 से 3 घण्टे चला और उसके उपरान्त मुझे विशेष वार्ड में शिफ्ट कर दिया गया और मेरा ध्यान चलता रहा. पाठकगणों को मैं बताना चाहूँगी कि यह सब ध्यान की अवस्था में ही प्रभुजी मुझे दर्शन देते हुए सारे कार्य दिखाते रहे। काफी समय के बाद भी जब मेरी ध्यान अवस्था नहीं टूटी तो वार्ड में उपस्थित नर्सों द्वारा (जो कि ध्यान की इस स्थिति से अनजान थीं) मुझे चेतना लाने का प्रयास किया गया, इसी बीच एक जोशीली वाणी द्वारा कहा गया कि दूर हटो इसे तंग मत करो यह ध्यान है लेकिन इस आवाज से नर्स काफी घबरा गई और दूर जाकर खड़ी हो गई और आपस में विचार करने लगीं कि जब अम्मा घंटी, जो कि बेड के बराबर में लगी हुई थी, को बजायेंगी तभी हम लोग इनको देखने जायेंगे।

कुछ समय उपरान्त सर्जन डॉक्टर का सहयोगी डॉक्टर मुझे देखने वार्ड में आया और वह आश्चर्य चकित होकर पूछने लगा कि अम्मा आपको क्या हो गया था तब मैंने कहा मुझे कुछ नहीं हुआ था, मेरा ध्यान लग गया था। यह सुनकर वह बोला क्या आप घर में भी ध्यान करती हो तो मैंने कहा पिछले 50 वर्षों से मैं ध्यान करती हूँ यह सुनकर वह डॉक्टर आश्चर्य में डूबा गया और चला गया। इस घटना से सभी नर्सें काफी प्रभावित हुई और उनको अस्पताल के नियमानुसार सुबह 5 बजे स्पंज करना होता था, परन्तु मैंने उनसे कहा कि मुझे 9 बजे जब मैं घण्टी बजाऊँ तब स्पंज करने आना सभी नर्सों ने 3 दिन तक इस बात का पालन किया और जब मुझे छुट्टी मिली तो सभी नर्सें डॉक्टर सहित मुझे नीचे छोड़ने आयें और प्रेम के आँसू सबकी आँखों में छलक रहे थे।

इसमें मेरी कोई बड़ाई नहीं है ये सब मेरे गुरुदेव महाराज एवं श्री महाप्रभु जी की विशेष कृपा का प्रसाद है जिसके कारण सभी अस्पताल वाले काफी प्रभावित हुए और दंग रह गये। इस पर मैंने कहा कि अब मैं प्रथम व अन्तिम मरीज हूँ जो आपके अस्पताल में आयी थी इसके बाद ऐसा मरीज कोई नहीं आयेगा व सभी नर्सों ने इसको स्वीकार किया कि बात ठीक है।

● ● ●

चकमक पत्थर अगर सैकड़ों साल पानी में पड़ा रहे फिर भी उसके भीतर की अग्नि नष्ट नहीं होती। पानी से बाहर निकालकर उस पर चोट मारते ही उसमें से चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। यथार्थ विश्वासी भक्त भी इसी तरह का होता है। हजारों अपवित्र विषयी लोगों से घिरा रहने पर भी उसके विश्वास या भक्ति की तनिक भी हानि नहीं होती। भगवान का नाम भगवत्प्रसंग सुनते ही वह प्रेम में मत्त हो जाता है।

– श्री रामकृष्ण परमहंस

गुरु महिमा

– श्रीमति वीरमती, रोहतक

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो मिलाय।

हम सच्चे मन से गोविन्द को पुकार कर कहते है हे गोविन्द मुझे सन्तों के चरणों की धूली दे दो, गुरु का दर्शन ही आत्मा का स्नान है। भारत, ऋषि मुनियों का उद्‌गम है, भारद्वाज ऋषि ने विमान बनाने की प्रक्रिया बताई, वास्तविक ज्ञानियों के अंगूठे काट दिये व लोग अन्धविश्वास में फसे। किसी आदमी का बच्चा 10वीं कक्षा में पढ़ता था। वह किसी झाड़ फूक वाले के पास गया व कहा कि बच्चे का दिमाग नहीं चलता तो उसने 50 रु. लिये व एक ताबीज दे दिया। आगे चला याद आया कि भैंस भी दूध ठीक प्रकार से नहीं देती वापस फिर उसी झाड़फूक वाले के पास गया व 50 रुपये देकर एक ताबीज और ले आया व दोनों एक साथ डाल लिये जो तीसरा आदमी उसे ऐसे करते देख रहा था, उसने कहा कि कभी आप भैंस वाला ताबीज लड़के के गले में व लड़के वाला भैंस के गले में न बांध दें क्योंकि दोनों एक जैसे है कभी भैंस प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण ना हो जाये। ये है अन्धविश्वास। हमारे गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जब सत्संग करते तो ऐसा आभास होता व लोग सुनकर कहते (एक फैक्ट्री वाला) कि सत्संग नहीं करते महाराज जी जीना सिखाते है। दुख क्यों आते हैं? हम कौन सी गलती करते है? कहाँ कमी रह गई? यहाँ ताबीज काम नहीं करेगा, अक्ल काम करेगी। अन्धेरे लोक से आये है प्रकाश की ओर जाना है अन्धेरे से उजाले में आये।

उजाला लाने के लिए गुरु से जुड़े। दुनिया में लोग गुरुओं से उजाला लेकर व देकर चले गये। जीवन में कपड़े पर दाग लग गया यह दाग किन्हीं प्रयत्नों से भी नहीं उतरता तो उस पर फूल बना लो। लड़की ने दादी से कहा कि शॉल पर दाग लग गया, दादी ने सुई से उस पर ऐसा फूल बना दिया दाग भी नजर नहीं आया व शॉल पहले से भी अधिक सुन्दर लगने लगी। माथा पकड़ कर बैठने से नही सीखो धब्बे को फूल कैसे बनाया जाता है, ऐसे सीखो। जिन्दगी महकेगी सत् को जोड़ सत् युग–युग तक– गुरुदेव ही आपके सदचितआनन्द आना श्रेष्ठ तत्व बाहर लाना है, श्रेष्ठों को इकट्ठा करना जब श्रेष्ठ लोग इकट्ठे होते है तो श्रेष्ठता लाते है, अन्यायी या बुराई बिल में घुसेगी तो भी जला देंगे श्रेष्ठ लोग। गुरुदेव कहते है – तुम्ही तुम्हारे मित्र हो तुम्ही तुम्हारे शत्रु, सुख–दुःख में समान रहे बैर रहित हो जाये, आसक्ति नहीं प्रेम होना चाहिए।

बच्चों से प्रेम करो मोह नहीं। पक्षी के बच्चे भी बड़े होकर उड़ जाते है। जगह की दूरी हो जाये तो कोई नहीं दिलों की दूरी मत रखना। अच्छों के कारण दुनिया चलती है। मोह वह

जलधारा है जो तालाब में जाकर सड़ जाये, धारा बन कर न बहे गुरुदेव देने का हिसाब ही नहीं रखते, कब क्या दिया है उनका प्रेम का मोल कोई नहीं चुका सकता। हर किसी का सम्मान करें सम्मान न करें तो दिल न दुखायें। जैसे पिता बार–बार सोचता है मेरे से बड़ा बने पिता अपने बच्चे से हारना चाहता है। इतना बड़ा दिल अगर है तो गुरुदेव का जो ठूंस ठूंस कर अपने बच्चों में शक्ति भर देते है। लेकिन हम अहंकार करते है। बुराइयों की जड़ अहंकार है।

जब मीरा कृष्ण की भक्ति में डूबती है तो मीरा को पता चलता है कि मैं तो हूं ही नहीं, प्रेम ही बचता है स्वयं को मानने वाला नहीं बचता (मैं की मात्रा) को मानने वाला नहीं बचता। विचार शून्यता से उपलब्ध होते है। अहंकार को समझो भीतर तुम्हारे कुछ नहीं, कुछ दिन रहोगे धरती पर फिर वहां से चले आओगे सब कुछ यहीं धरा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा।

● ● ●

गुरु स्तुति

— मोती राम गर्ग, अलूपुर

टेक – विनती सुनो प्रभू जी मेरी।
हम सब आए शरण में तेरी।।

तुम दीनों के दीनदयाल हो
इस जग के पालनहार हो।
भक्तों को तुम प्यारे हो
दुखियों के आप सहारे हो
हम मूर्ख तुम ज्ञान की ढेरी।
विनती सुनो प्रभू जी मेरी।। 1।।

योगेश्वर सुख धाम प्रभो
मेरा तुम्हें प्रणाम प्रभो
इस जीवन के आधार प्रभो
सर्व शक्तिमान प्रभो
दर्श दिखा दो क्यों लाई देरी
विनती सुनो प्रभू जी मेरी।।2।।

योग सुधा बरसाते हो
दुखियों को गले लगाते हो
मंद मंद मुस्काते हो
शक्तिपात कराते हो
हम माने सब आज्ञा तेरी
विनती सुनो प्रभु जी मेरी।।3।।

मोती राम तेरा गुण गावे
प्रभू प्रभू की रट लगावे
गुरु चन्द्र मोहन को शीष नवावे
ध्यान लगा कर दर्शन पावे।
तुम प्रकाश मैं रात अन्धेरी
विनती सुनो प्रभु जी मेरी।। 4।।

● ● ●

स्व चिन्तन

प्रेषक : राम रतन तिवारी, एडवोकेट, दतिया (म.प्र.)

स्व केवल स्व में रहे, हो पर से निर्लिप्त।
पराधीन हो भटककर, मन होता विक्षिप्त ।।

स्व पूर्ण है स्वयं में, नहिं पर के आधीन।
पर से जुड़कर भ्रमित हो, रह न सके स्वधीन।।

स्वामी केवल वही है, स्व जिसके आधीन।
जो आश्रित है अन्य के, सो नहिं है स्वाधीन।।

भाव, प्रभाव, कुभाव से, हो जब मुक्त स्वभाव।
निर्मल मन अरु बुद्धि में, उदित सत्य का भाव।।

साधन से जो सुख मिले, सीमित अरु सापेक्ष।
आनन्द स्वयं भू, आत्म में नित्य और निर्पेक्ष।।

ज्ञान चेतना में भरा, भ्रमित करे अज्ञान।
ज्ञान स्वयं भू नित्य है, भ्रम से है भटकान।।

सुख दुख मन के भाव है, मन को रख स्वधीन।
जीवन को लीला समझ, जग में हो मत लीन।।

मैं से मुक्त न हो सके, कर मैं का विस्तार।
मैं को सब में मान्यकर हो आनन्द अपार।।

जीवन नाटक मानिये, रंगमंच संसार।
मानव अभिनेता बना, निर्देशक करतार।।

अपने को कर्ता समझ, व्यर्थ करे अभिमान।
होनी ही होती सदा, है निमित्त इन्सान।।

सुख दुख की अनुभूति यदि, हो पर के आधीन।
दास रहेगा तू सदा, होगा नहिं स्वाधीन।।

अनुभूति शुद्ध आनन्द की, गहन शान्ति में होय।
जग की भटकन में मनुज, असन्तुष्ट हो रोय।।

अस्तित्व मात्र का अंश मैं, सम्भव नहिं बिलगाव।
बिलग अहम् को मानकर, है जग में भटकाव।।

अपने में परिपूर्ण मैं, राग द्वेष से मुक्त।
साधक हूं आनन्द का, शुद्ध चेतनायुक्त।।

सब प्रकार परिपूर्ण मैं, नहीं किसी विधिहीन।
भूल स्वयं के मूल को, बनता दीन मलीन।।

सर्व व्याप्त परमात्म यदि, तो मुझमें भी व्याप्त।
नित्य पूर्ण सर्वत्र तब, मुझे पूर्ण प्रभु प्राप्त।।

सर्व व्याप्त अस्तित्व का, हूं अविभाजित अंश।
विलग स्वयं को मानकर, बना लिया निज अंश।।

जब जैसा जो प्राप्त हो, प्रभु प्रसाद सो मान।
आनन्द भाव से ग्रहण कर, हो सब विधि कल्याण।।

मन निर्मल, तन स्वस्थ्य हो, कर्म बने निस्काम।
सहज भाव जीवन चले, चित् लहे विश्राम।।

जीवन की संजीवनी, प्रबल आत्मविश्वास।
श्रद्धानुरूप जीवन चले, हो नहि कभी निराश।।

निष्पक्ष भाव से परखिये, जन मन के गुण दोष।
देह प्राण सबके भले, आत्मा है निर्दोष।।

माया ममता लोभ नहि, करूँ स्वार्थ का त्याग।
द्वेष भाव नहि किसी से सबके प्रति अनुराग।।

वीत राग मन में रहे, वाणी में माधुर्य।
परहित में हों कर्म सब, यह सच्चा चातुर्य।।

सबके सुख की कामना, परहितार्थ हों कर्म।
द्वेष भाव नहिं किसी से, है यह मानव धर्म।।

प्रेम भाव हो सभी से, मेरा सब में अंश।
अहम् जनित बिलगाव से, भया हुआ विध्वंश।।

पूर्ण ज्ञान में चेतना, लहती परमानन्द।
जग खो जाता स्वच्छंदता, रहे सच्चिदानन्द।।

मन, बुद्धि, अरु कर्म के, सारे क्रियाकलाप।
परहितार्थ जब तक रहे, नहीं बनेगा पाप।।

● ● ●

योगयुक्त साधक की अवस्था

लेखिका – डॉ. राजकुमारी त्रिखा, 'महाभारत में योग विद्या' से साभार उद्धृत

(गतांक से आगे)

अनुगीता पर्व में इस स्थिति को समझाते हुए कहा गया है – साधक आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् देह व आत्मा की भिन्नता को भलीभांति समझ लेता है। जिस प्रकार मनुष्य स्वप्न में किसी अपरिचित व्यक्ति को देखने के पश्चात्, जब पुनः उसे जाग्रत अवस्था में, आमने–सामने देखता है, तब तुरन्त पहचान जाता है ''यह वही व्यक्ति है, जिसे मैंने स्वप्न में देखा था,'' इसी प्रकार साधनापरायण योगी समाधि अवस्था में आत्मा को जिस रूप में देखता है, उसी रूप में व्युत्थित दशा में भी देखता रहता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति मूँज से उसके सारभाग, सींक को अलग करके देखता है, उसी प्रकार योगी पुरुष आत्मा को इस देह से पृथक् अनुभव करता है। यहाँ शरीर को मूँज कहा गया है तथा आत्मा को सींक।

यथा हि पुरुषः स्वप्ने दृष्ट्वा पश्यत्यसाविति।
तथा रूपमिवात्मानं साधुयुक्तः प्रपश्यति।।
इषीकाञ्च यथा मुञ्जात् कश्चिन्निष्कृष्य दर्शयेत्।
योगी निष्कृष्य चात्मानं तथा पश्यति देहतः।।
मुञ्जं शरीरमित्याहुरिषीकामात्मनि श्रिताम्।
एतन्निदर्शनं प्रोक्तं योगविद्भिरनुत्तमम्।।

– आश्वमे. 14.21–23

उसके लिए कोई पराया नहीं रहता – वसुधैव कुटुम्बकम्। उसे सृष्टि के कण–कण में अपने इष्टदेव का दर्शन होता है तथा इष्टदेव में ही सम्पूर्ण चराचर जगत् दिखाई देता है।

जब सर्वत्र परमात्मा का ही दर्शन होता है, तो स्पष्ट है कि ऐसे योगी को सभी प्राणी अपने ही समान प्रतीत होते हैं। उनका दुःख योगी का अपना ही दुःख होता है व उनका सुख उसका अपना सुख होता है।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।

– भीष्म. 30.32 (श्रीमद्भगवद्गीता 6.32)

इस प्रकार योगी सम्पूर्ण विश्व को आत्मीय मान कर व्यवहार करता है। वह अन्य सांसारिक मनुष्यों से सर्वथा भिन्न विशुद्ध यौगिक व्यवहार करता है तथा लौकिक विषयजन्य सुख–दुःख की भावना से ऊपर उठकर निज स्वरूप में स्थित रहता है।

जब साधक सवितर्क, निर्वितर्क तथा सविचार समाधि की अवस्था को पार करके निर्विचार समाधि की निर्मलता प्राप्त करता है, तब उसे ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है।

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।। – पात. यो.सूत्र. 1.48

इस समय योगी भूत वर्तमान अथवा भविष्य की सत्य घटनाओं का ही साक्षात्कार करता है। साधक सत्य घटनाओं को जानकर उनके प्रति अपने भाव अभिव्यक्त करता है।

इस प्रकार महाभारत में योगी की स्थिति का वर्णन पातंजल योगसूत्र में वर्णित सिद्धान्तों के अनुकूल है।

(ग) योगभ्रष्ट साधक की गति–वर्णन

योग साधना का मार्ग 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया' है। सर्वप्रथम तो इस ओर मानव की प्रवृत्ति ही नहीं होती। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कहा गया है – हजारों मनुष्यों में से कोई एक ही योगमार्ग में प्रवृत्त होता है।

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये।

– भीष्म. 32.3 (श्रीमद्‌भगवद्‌गीता 8.3)

पूर्वजन्मों के पापों का क्षय होने पर ही सिद्धगुरुदेव की प्राप्ति होती है। उन्हीं की कृपा से साधक योगमार्ग में प्रगति करता है तथा सफलता को प्राप्त करता है। शास्त्रों में कहा गया है – मोक्षप्राप्ति का मूलकारण गुरुकृपा है।

– मोक्षमूलं गुरोर्कृपा। – स्कन्द पुराण, उत्तरखण्ड, गुरुगीता, श्लोक 76

इसका विशिष्ट कारण है। योगसाधना में किञ्चित प्रगति होने के पश्चात् जब विघ्न व बाधाएँ आती हैं अथवा योगसिद्धियों को प्राप्त करके योगी अभिमानी होकर आत्मप्रशंसा व यश की कामना करने लगता है तब अज्ञानरूपी भंवर में डूबती हुई साधनारूपी नौका को सिद्धगुरुदेव ही अपनी कृपा व प्रेरणा द्वारा पार लगाते हैं, डूबने नहीं देते। यह लम्बी योगयात्रा अनेक जन्मों तक चलती है, तब कहीं जाकर योगी सफल होता है तथा परमगति को प्राप्त करता है।

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।

– भीष्म. 30.45 (श्रीमद्‌भगवद्‌गीता 6.45)

भगवान् कृष्ण ने जब यह बात अर्जुन को बताई तो अर्जुन संशयग्रस्त हो गया। उसने श्रीकृष्ण से वह प्रश्न पूछा, जो किसी भी बुद्धिजीवी का प्रश्न हो सकता है। उसने कहा – जो व्यक्ति योगसाधना में लगा रहा, परन्तु उसमें सफल न हो सका, तो वह व्यक्ति न तो लौकिक दृष्टि से धनार्जन कर जीवन को सफल व सम्पन्न बना सका और न ही साधना के अन्तिम लक्ष्य कैवल्य को पा सका। उसकी अवस्था तो अत्यन्त निरीह व दीन हीन हो गई। दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम, वाली स्थिति चरितार्थ हो गई। तब उस बेचारे योगसाधक का अन्त क्या

होगा? क्या उसकी योगसाधना व्यर्थ हो गई?

अयति: श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण! गच्छति।।
कच्चिदुभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मण: पथि।।

– भीष्म. 30.37–38 (श्रीमद्भगवद्गीता 6.37–38)

तब भगवान कृष्ण अर्जुन के इस तर्कसंगत प्रश्न का सान्त्वनापूर्ण उत्तर देते हुए कहते हैं – हे अर्जुन! उस असफल एवं योगभ्रष्ट साधक का न तो इस लोक में ही नाश होता है और न ही परलोक में। शुभकार्य करने वाला व्यक्ति कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। मृत्यु के पश्चात् वह अपनी योगसाधना के पुण्यों के फलस्वरूप पुण्यशाली व्यक्तियों के लोकों में अनेक वर्षों तक निवास करता है। तत्पश्चात् पवित्र व धनवान् व्यक्तियों के वंश में जन्म लेता है, अथवा वह योगियों के ही वंश में उत्पन्न होता है। ऐसे वंश में जन्म मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। वहां जन्म लेकर वह पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण साधनासम्बन्धी उन्हीं विचारों को प्राप्त करता है तथा पुनः योगसिद्धि प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। पूर्वजन्मों की योगसाधना के संस्कारों से विवश होकर वह योगमार्ग की ओर आकर्षित होता है। फिर अनेक जन्मों के पश्चात् वह परमगति प्राप्त करता है।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।।
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीस्समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।।
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूय: संसिद्धौ कुरुनन्दन।
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि स:।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।

– भीष्म. 30.40–45 (श्रीमद्भगवद्गीता 6.40–45)

इस प्रकार योगभ्रष्ट साधक की पूर्वजन्मों की साधना कभी व्यर्थ नहीं जाती। इसका कारण यह है कि योग का जिज्ञासु भी वेदोक्त कर्मकाण्ड से भी अधिक पुण्य का अधिकारी होता है।

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते। –वही 44

श्रीकृष्ण के इस कथन की पुष्टि महाभारत में अन्य अनेक स्थलों पर भी की गई है। भीष्म पितामह युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहते हैं – हे पुत्र! हजारों अश्वमेध यज्ञों तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञों का पुण्य फल भी, योगाभ्यास के फल की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होता अर्थात् योगाभ्यास का पुण्य इन यज्ञों के पुण्यफलों से कहीं अधिक होता है।

अश्वमेधसहस्त्रस्य वाजपेयशतस्य च।

योगस्य कलया तात न तुल्यं विद्यते फलम्।।

– शान्ति. 323.9

मन में जिज्ञासा उठती है कि मृत्यु के तुरन्त पश्चात् योगभ्रष्ट साधक पुण्यवानों के किन लोकों में जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – अन्तकाल अर्थात् मृत्युकाल में जिस-जिस भाव को स्मरण करते हुए प्राणी शरीर त्यागता है, उसका मन उसी-उसी भाव से परिपूर्ण होकर उसी भाव को प्राप्त होता है।

यं यं वाऽपि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।

तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावित:।।

– भीष्म. 32.6 (श्रीमद्भगवद्गीता 8.6)

पुन: भगवान् कहते हैं जो व्यक्ति देवताओं को पूजते हैं, वे देवताओं को ही प्राप्त होते हैं। जो पितरों की पूजा करते हैं, वे पितरों को प्राप्त होते हैं जो भूतों को पूजते हैं, वे भूतों को प्राप्त होते हैं तथा जो मुझे (श्रीकृष्ण भगवान् को) भजते हैं, वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रता:।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।

– भीष्म. 33.25 (श्रीमद्भगवद्गीता 9.25)

इस प्रकार साधक अपने ध्येय को ही प्राप्त होता है। तदनुसार विष्णुभक्त विष्णुलोक को जाते हैं।

ध्यानयोगपराश्चैव तत्र गच्छन्ति मानवा:।

– वन. 261.39

प्रत्येक साधक को अपने पुण्यानुसार उत्तमलोकों की ही प्राप्ति होती है। ध्यानाभ्यास द्वारा साधक का मन ममता व अहंकारादि मानसिक दोषों से रहित हो जाता है तथा उसे उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है। आश्वमेधिक पर्व में कहा गया है – जो योगी ममता व अहंकार से रहित है, परंतु ध्यानपथ से लौट पड़े हैं, अर्थात् ध्यानाभ्यास में असफल हैं, वे भी महापुरुषों के उत्तम लोकों में (नीलकण्ठानुसार अव्यक्त प्रकृति में) प्रवेश करते हैं।

ध्यानयोगेन शुद्धेन निर्ममा: निरहङ्कृता:।

आप्नुवन्ति महात्मानो महान्तो लोकमुत्तमम्।।

(क्रमश:)

ध्यानयोगादुपागम्य निर्ममा: निरहङ्कृता:।
अव्यक्तं प्रविशन्तीह महतां लोकमुत्तमम्।।

– आश्वमे. 51.22–24

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि साधना के अन्तिम लक्ष्य असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त न करने वाला साधक भी परमपुण्यार्जन करता है तथा योगसाधनाजन्य पुण्य का उपभोग करके, पुन: योगयात्रा में प्रवृत्त होने के लिए मानवजन्म ग्रहण करता है। फिर कालान्तर में साधना द्वारा आत्मदर्शन रूप सिद्धि को प्राप्त करता है। 'कृतस्य प्रणाशो न' इस सिद्धान्तानुसार योगसाधना कभी व्यर्थ नहीं होती व उसका उचित फल उपयुक्त समय पर अवश्य ही प्राप्त हो जाता है।

• • •

शोक संवेदना

(1) बड़े दु:ख से सूचना देना पड़ रहा है कि हमारे एक पुराने गुरुभाई कालपी निवासी श्री चन्द्र किशोर दुबे जी का 30 नवम्बर का देहावसान हो गया है। इन्होंने कालपी में गुरुदेव के कई प्रचार कार्यक्रम कराये थे। इस दु:ख की वेला में हम उनके दु:खी परिवार को हार्दिक संवेदना प्रेषित करते हैं। प्रभु उन्हें इस दु:ख को सहन करने की क्षमता प्रदान करें।

(2) अमृतसर आश्रम के संचालक श्री मुलख राज जी महाराज के शिष्य श्री राम प्यारे जी महाराज का 4 दिसम्बर को देहावसान हो गया है। वे काफी लम्बे समय से बीमार चल रहे थे और आयु भी 84–85 की हो गई थी। परिवारिजनों को तथा शिष्य मण्डली को इस दु:ख को सहन करने की शक्ति दें।

जय गुरुदेव की ....

– संपादक सिद्धयोग

अष्टांग योग साधना (बहिरंग)

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

यद्यपि परमात्मज्ञान वैज्ञानिक अन्वेषणों का विषय नहीं है क्योंकि परमात्मा प्रकृति से परे है और वैज्ञानिक अन्वेषण प्राकृतिक साधनों पर निर्भर रहते हैं। प्रकृति भी परमात्मा की माया का कार्य है अतः कारण होने के नाते माया भी वैज्ञानिक अन्वेषणों का विषय नहीं हो सकती। अतः द्वैतसृष्टि का विज्ञान भी पूर्णरूपेण प्राकृतिक साधनों से नहीं प्राप्त किया जा सकता, तथापि महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग का ऐसा आविष्कार किया जो आंशिक रूप से बुद्धि का भी विषय है तथा मुख्यतः आध्यात्मिक चिन्तन तथा प्रज्ञानुभूतियों का विषय है। प्रथम कल्पित जीवभाव को समझने तथा त्यागने के लिए निश्चयात्मिका तथा विशुद्ध बुद्धि के द्वारा यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार के साधनों के द्वारा गुणविकारों को क्षीण करना तथा आध्यात्मिक चिन्तन के लिए अपनी योग्यता पुष्ट करना आवश्यक है। उसके उपरान्त ध्यान तथा समाधि के द्वारा चित्त की अशुद्धियों को नष्ट कर प्रज्ञानुभूतियों की भूमिकाओं में प्रविष्ट कर परमात्मभाव में प्रवेश करना होगा। ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति के बाद ही क्लेश तथा कर्मसंस्कारों का क्षय सम्भव है। इसके उपरान्त ही परमात्म–साक्षात्कार की स्थिति आती है जबकि –

अष्टांगयोगानुष्ठानात् अशुद्धिक्षये,
ज्ञानदीप्तिः आविवेकख्यातेः।
पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः
कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेः इति।।

(योगदर्शन)

अर्थात् महर्षि पतंजलि द्वारा आविष्कृत अष्टांगयोग की साधना करने पर अर्थात् अष्टांगयोग की श्रद्धाविश्वासपूर्वक चिरकाल तक निरन्तर साधना करने से जब चित्त की पंचक्लेश तथा कर्मसंस्कार रूपी अशुद्धि का नाश हो जाय और चित्त का निरोधपरिणाम *(जब चित्त से व्युत्थान की चित्तवृत्तियों का पूर्ण क्षय हो जाय तथा निरोधसंस्कार का प्रादुर्भाव हो जाय तब चित्त निरोधकाल में आत्मतत्व के रूप में दृष्टा से ही प्रकाशित रहता है। इसे चित्त का निरोधपरिणाम कहा जाता है।)* सिद्ध हो जाय तब आत्मज्ञान की ज्ञानज्योति स्वतः प्रकट हो जाती है। जब माया की द्वैतसृष्टि तथा भ्रान्तिज्ञान के मुख्य आदि कारण तीनों गुण पुरुषार्थशून्य होकर अपनी कारणभूता अविद्या माया में लुप्त हो जायें, तब आत्मतत्व अपने सत्यस्वरूप में प्रकट हो जाता है जिसे कैवल्यावस्था कहा जाता है।

इस अध्याय में हमें तीन विषयों पर गहराई से विचार करना है। प्रथम विषय है कि चित्त की अशुद्धि क्या है और इसके नाश के लिए किन–किन साधनाओं की आवश्यकता है।

साधनाओं की सिद्धि के बाद कब और कैसे वह ज्ञानदीप्ति प्रकट होकर माया के मलावरण का नाश कर परमात्मस्वरूप का ज्ञान कराती है जिसके उपरान्त –

आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः आनन्दरूपं अमृतं यद्विभाति।।

(मुण्डक उप. 2/7)

अर्थात् आत्मज्ञान होने पर स्वतः माया के रहस्यों का ज्ञान हो जाता है तथा उस विज्ञान को पाकर आत्मज्ञ महापुरुषों का चित्त आनन्दस्वरूप तथा अमृतस्वरूप आत्मतत्व से प्रकाशवान हो जाता है। दूसरा विषय है कि अष्टांगयोग क्या है और इसकी साधना कैसे की जाती है? तीसरा विषय है कि सात प्रान्तभूमि वाली प्रज्ञा की प्राप्ति की साधना किस प्रकार पूर्ण होती है और उसकी प्रत्येक प्रान्तभूमि में कैसी अनुभूतियाँ होती है। जब योगी चित्त के समाधिपरिणाम तथा निरोधपरिणाम सिद्ध करते हुए प्रज्ञा की उत्तरोत्तर श्रेष्ठ प्रान्तभूमियों से गुजरता है तब उसे परमात्मा की दिव्य तथा व्यापक शक्तियों की अपरोक्ष अनुभूतियाँ होती जाती हैं। इस योगसाधना की विशेषता यह है कि योगी के अन्तःकरण में माया तथा परमेश्वर के ऐश्वर्यों तथा रहस्यों का पर्दाफाश होता जाता है।

सर्वप्रथम हम उस अशुद्धि को जानने का प्रयास करेंगे जिसके क्षय के बिना आध्यात्मिक सिद्धि सम्भव ही नहीं। वह अशुद्धि है गुणविकारों के पंचक्लेश तथा उनसे उत्पन्न कर्माशय। इनसे उत्पन्न वृत्तियों के परिणाम तथा संस्कारों के अतिरिक्त तीनों गुणों का वृत्तिविरोध भी अन्तःकरण में मलावरण बनाता रहता है। यह पंचक्लेश मायाशक्ति के प्रमुख सैनिक हैं– वह हैं अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश। अविद्या की परिभाषा है –

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिः अविद्या।।

(योगदर्शन 2/5)

अर्थात् मिथ्या भ्रान्तिज्ञान कराने वाली शक्ति अविद्या है। इसके प्रभाव में अनित्य पदार्थ नित्य भासित होते हैं, जैसे संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील तथा कालान्तर में नाशवान है फिर भी हम उन्हें नित्य मानकर उनके इस स्वभाव से दुःखी होते हैं, अन्यथा सम्पत्ति के नष्ट होने पर या किसी प्रिय की मृत्यु पर हम दुःखी क्यों होते हैं। हम अशुद्धि में शुद्धि देखते हैं, अन्यथा हमारा शरीर अथवा हमारे प्रिय परिवार के सदस्यों का शरीर गुणविकारों से बना है, अशुद्धियों से भरपूर है फिर भी हम शुद्ध मानकर उससे प्यार करते हैं। हम दुःख में सुख तथा अनात्मा में आत्मा का भाव करते हैं, जैसे सभी विषय भोगों में होने वाली सुखानुभूति मिथ्या तथा भ्रान्तिपूर्ण है, क्योंकि जिसका आदि तथा अन्त मिथ्या है उसका मध्य भी भ्रान्तिपूर्ण तथा मिथ्या है, उदाहरण के लिए कुत्ता हड्डी चूसने में सुख का अनुभव करता है, किन्तु वह हड्डी से घायल जबड़े से अपना ही खून चूसता है अथवा जैसे खुजली खुजाने से सुख का अनुभव होता है किन्तु रोग तथा दर्द दोनों बढ़ जाते हैं। इसीलिए शास्त्र का कथन है कि –

परिणामतापसंस्कारदु:खै: गुणवृत्तिविरोधाच्च सर्वं दु:खं विवेकिन:।।

(योगदर्शन 2/15)

ये हि संस्पर्शजा: भोगा: दु:खयोनय: एव ते।
आद्यन्तवन्त: कौन्तेय न तेषु रमते बुध:।।

(गीता)

अर्थात् सभी विषयभोगों के सुख वस्तुत: दु:खरूप हैं, क्योंकि उनका परिणाम जन्ममरण का दु:ख तथा कर्मबन्धन के कारण शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के दु:खों का कारण है। आदि तथा अन्त में अस्तित्वहीन होने से भ्रान्तिमात्र हैं। अत: विद्वान उनमें रमण नहीं करते। इसी तरह सभी योनियों के शरीर पंचभूतात्मक होने से जड़ हैं फिर भी सभी जीवित प्राणी उन्हीं अनात्मा में आत्मा का अनुभव करते हैं। यही विपरीत भ्रान्तियुक्त ज्ञान अविद्या है। दूसरा क्लेश अस्मिता है जिसके द्वारा माया का भ्रान्तिजन्य खेल खेला जाता है। इसकी परिभाषा है –

दृग्दर्शनशक्त्यो: एकात्मता अस्मिता।।

अर्थात् आत्मतत्व के रूप में दृष्टा तथा मायारचित इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि की एकात्मता अस्मिता कहलाती है। इस एकात्मता के कारण माया की जड़शक्तियाँ चैतन्यवान होकर संसार का व्यवहार करती हैं और उनकी असमर्थतायें तथा न्यूनतायें आत्मा पर आरोपित हो गयी हैं। मन की अनुकूलता से पदार्थों में आसक्ति राग क्लेश है तथा प्रतिकूलता से द्वेष क्लेश का जन्म होता है। यही राग तथा द्वेष गुणबन्धन के रूप में जीवात्मा को शरीर में बाँधकर रखता है तथा जन्म–मृत्यु का कारण बनता है। यही जन्म–मृत्यु के दु:ख का भय अभिनिवेश क्लेश है। यही पंचक्लेश कर्माशय की रचना करते हैं। इस तरह माया द्वारा संचालित गुणबन्धन तथा कर्मबन्धन जीवात्मा को मायाजाल में बाँधकर कल्पित द्वैतसृष्टि का निर्माण कर संसार का रूप देते हैं। वेदवाणी इसी ओर संकेत करती है कि –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वादवत्ति अनश्ननन्यो अभिचाकशीति।।
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्न: अनीशया शोचति मुह्यमान:।
जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोक:।।

(मुण्डक उप. 3/1/1,2)

स्थूलानि सूक्ष्मानि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणै: वृणोति।
क्रियागुणै: आत्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतु: अपरोऽपि दृष्ट:।।

(श्वेता. उप. 5/12)

● ● ●

(क्रमश:)

देह और देही ?

– परमहंस स्वामी योगानन्द

(आप महावतार बाबा के शिष्य परम्परा में तीसरी पीढ़ी में आते है, आपने पश्चिम के देशों में योग का बहुत प्रचार किया है। – संपादक)

अत्यन्त मलिनो देहो, देही चात्यन्त निर्मलः।
असंगोऽहमिति ज्ञात्वा, शौचमेतत्प्रचक्षते।।

अर्थ :– देह अत्यन्त मलिन है और देही – आत्मा अत्यन्त शुद्ध है, इसलिए मैं असंग हूँ ऐसा जानना इसी को शौच कहते हैं।

शेष परब्रह्म को दिखलाकर जिसका त्याग हुआ है ऐसे ज्ञानाज्ञान–अविद्या और उसका कार्य ब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड शरीर है और शरीर ब्रह्माण्ड है। शरीर छोटा और व्यक्तिरूप है, ब्रह्माण्ड बड़ा और समष्टि रूप है, एक शरीर को समझाने से ब्रह्माण्ड समझा जाता है इससे शरीर का वर्णन करते हैं। यह शरीर अत्यन्त मलिन है क्योंकि मलिन स्थान से उसकी उत्पत्ति हुई है, मलिन पदार्थों से भरा हुआ है, वर्तमानकाल में भी मलिन ही रहता है और मृत्यु में मलिन–अपवित्र होता है, उसको छूने वाले मलिन होने से ही छूकर स्नान करते हैं। स्थूल शरीर, अस्थि, मांस, चर्म, मेद, रक्त, मज्जा, मूत्र, मल और लालादिक से भरा हुआ है, क्षण–क्षण में विकार को प्राप्त होता रहता है, अनेक व्याधियों का स्थान है, उत्पत्ति, स्थिति और नाश वाला है।

सूक्ष्म शरीर काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर आदि दुःखकर दुष्ट वृत्तियों का होने से अशुद्ध है और कारण शरीर अज्ञान स्वरूप जड़ होने से अपवित्र है इसी प्रकार दोनों शरीर सहित स्थूल शरीर अत्यन्त अपवित्र है।

शरीर का प्राप्त होना ही अशुद्धि का प्राप्त होना है, अविद्या अशुद्धि होने से अविद्या और अविद्या का कार्य रूप शरीर अपवित्र है; ऐसे शरीर की शुद्धि किसी प्रकार नहीं हो सकती। जो उसे शुद्ध करने का प्रयत्न करते हैं वे मल–मूत्र को धोकर शुद्ध करने वाले के समान हैं। शरीर अशुद्ध है और आत्मा अत्यन्त निर्मल शुद्ध है ऐसा देखने वाला ठीक–ठीक देखता है। आत्मा शुद्ध साक्षी है; शरीर में रहकर भी असंग होने से शरीर की मलिनता आदि दोषों से लेपायमान नहीं होता। जैसे मृत्तिका का घट अशुद्ध पदार्थ भरने से अशुद्ध होता है, परन्तु उसमें रहा हुआ आकाश अशुद्ध नहीं होता तैसे देह की मलिनता से देह में रहा हुआ आत्मा मलिन नहीं होता, और जैसे घट को धोकर साफ करते हैं तब उस धोने की क्रिया का स्पर्श आकाश को नहीं होता वैसे ही शरीर की सफाई का स्पर्श आत्मा को नहीं होता।

देह की अशुद्धि का प्रायश्चित देही–आत्मा को नहीं है। आकाश सब स्थानों में सब पदार्थों में रहा हुआ है तो भी असंग होने से पदार्थों की मलिनता से मलिन नहीं होता, इसी प्रकार

आत्मा में स्वर्ग–नरक बंध मोक्ष और सुख दु:खादि द्वन्द्व नहीं होते। आकाश शुद्ध और असंग है तो भी अविद्या का कार्य होने से जड़ और अशुद्ध ही है और आत्मा तो सत्स्वरूप होने से स्वाभाविक ही शुद्ध स्वरूप है।

आत्मा की शुद्धता का आरोप अविद्या से देह में किया जाता है और अविद्या से शरीर की अशुद्धता का आरोप देही आत्मा में किया जाता है ऐसा अन्योन्याध्यास ही देही जीव के दुःखी होने का कारण है, वास्तव में तो देही शुद्ध है और देह अशुद्ध ही है। जैसे देह अशुद्ध होने से शुद्ध नहीं हो सकता ऐसे देही–शुद्ध स्वरूप आत्मा किसी प्रकार किसी से अशुद्ध नहीं हो सकता।

जब देह से अहं भाव रूप बुद्धि के पाप की निवृत्ति होती है तब ही अखण्ड निर्मल असंग सब प्रकार से पूर्ण ब्रह्म का स्फुरण होता है, मैं ब्रह्म हूँ, सत हूँ, असंग हूँ, आनन्द स्वरूप हूँ, अबाधित चैतन्य स्वरूप हूँ ऐसा दृढ़ अपरोक्ष आत्म–ज्ञान होना ही पवित्रता है ऐसे ज्ञान से ही शरीरादिक अहं भाव और मम भाव रूप मल का त्याग–शौच हो जाता है। देह में ''मैं हूँ'' ऐसा भाव अपवित्रता है उसका त्याग करके देही जो आत्मा है उसमें ''मैं हूँ'' ऐसा दृढ़ भाव होना पवित्रता है।

• • •

तेरे दर के सिवा कोई दर

– चन्द छवि बालक
विजय कुमार शर्मा
सहारनपुर

तर्ज : एक तू जो मिला

आया दर पे तेरे, संग कोई ना मेरे।
तेरे दर के सिवा, कोई दर ना मिला।
पाप कर्मों की अग्नि में, मैं जल रहा
कष्ट इतने मिले, मैंने सबको सहा
भूल ऐसी हुई, रूठी किस्मत मेरी
तेरे दर के ...

कर्म बन्धन से कोई ना बच पायेगा
कर्म जैसा किया वैसा फल पायेगा
सत कर्म तू कर, राह प्रभु जी की चल
तेरे दर के ...

मानव तन देके प्रभु जी ने मौका दिया
मुक्ति पाने को सद्‌गुरु का दर है दिया
द्वार गुरु जी के आ, अमृत ज्ञान को पा
तेरे दर के ...

कृपा प्रसाद सद्‌गुरु से जब पायेगा
त्रय तापों से मुक्ति भी पा जायेगा
तेरा शुद्ध होगा मन, होगा प्रभु से मिलन
तेरे दर के ...

योगेश्वर गम्भीरनाथ जी महाराज का जीवन वृत्त

शिवकल्प गोरखनाथजी का साधन-जीवन गम्भीरनाथ का आदर्श था। सांसारिक आवेष्टन से बाहर सघन वन में बैठ कर इस महायोगी ने दीर्घकाल तक तपस्या की थी। उन्होंने असाधारण योगेश्वर्य एवं ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। उसी परम प्राप्ति की आशा में गम्भीरनाथ व्याकुल हो उठे। कठोरतर तपस्या के लिए तैयार होने में विलंब करना अब उनके लिए असह्य हो उठा।

अध्यात्म-अनुभूति का द्वार अब एक-एक कर खुलता जा रहा था। इसलिए साधक को इच्छा हुई कि किसी सुदूर निर्जन स्थान में जाकर निरवच्छिन्न साधन में लग जाएँ। गुरु गोपालनाथ जी ने इस बार उन्हें बाधा नहीं दी। तीन वर्षो तक अपने घनिष्ठ साहचर्य में रखने के बाद उन्होंने अपने स्नेह भाजन शिष्य को आश्रम त्यागने की अनुमति दी।

गोरखपुर से दक्षिण दिशा में उन्होंने यात्रा आरंभ की। पहले वह विश्वनाथपुरी वाराणसी पहुँचे। वाराणसी युग-युगांतर से साधकों की चिर अभिलषित तपोभूमि रही है। उनकी इच्छा हुई कि कुछ दिनो तक यहाँ रह कर साधन-भजन करें। अकिंचन योगी केवल एक कौपीन और कंबल का संबल साथ लेकर मार्ग पर बढ़ते चले जा रहे है। भूख, प्यास और टिकने के स्थान की ओर उनका बिल्कुल ध्यान नहीं है। उस समय उन्होंने अयाचक वृत्ति ग्रहण कर ली थी।

मार्ग पर चलते-चलते एक दिन गम्भीरनाथजी बहुत थक गये। भूख-प्यास से व्याकुल हो रहे थे। इसी समय देखा गया कि एक पूर्व परिचित ब्राह्मण तेजी से उनकी ओर बढ़ता चला आ रहा है। समीप आकर उसने गम्भीरनाथ को एक वृक्ष की छाया में बैठाया। इसके बाद सविनय कहने लगा, "गत रात श्रीनाथजी ने मुझे स्वप्नादेश दिया – 'इस स्थान में एक श्रांत, क्षुधा – पीड़ित परिव्राजक का आगमन होगा, तुम उसके भोजन एवं सेवा परिचर्या की व्यवस्था करो।' ब्राह्मण इसीलिए वहाँ दौड़ा हुआ आया था। अयाचित रूप में प्राप्त भोजन की वस्तुओं को खा लेने के बाद गम्भीरनाथ जी ने फिर चलना आरंभ कर दिया।

काशी पहुँचने पर उन्हें असीम आनंद प्राप्त हुआ। उनके विचार से यह प्रसिद्ध तीर्थ सब तीर्थों का राजा था। गंगा स्नान एवं विश्वनाथ जी की पूजा समाप्त करके उन्होंने नदी तट में एक निर्जन स्थान चुन लिया और वहीं लगातार तीन वर्षो तक योग साधना में निमग्न रहे। उन्होंने यहाँ तप करते हुए अनेक उच्चतर आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त की। एक शक्तिमान साधक के रूप में उनकी ख्याति बढ़ने लगी जिससे योग-साधना के अनुकूल निर्जन परिवेश नहीं रह गया। इसलिए गम्भीरनाथ जी ने काशी का परित्याग कर दिया।

इसके बाद प्रयाग उनका साधन स्थान हुआ। झूसी के एक एकांत स्थान में बालू की

गुफा में रहकर वे कठोर तपस्या करने लगे। संयोगवश मुकुटनाथ नामक एक युवक साधु वहाँ कहीं से आ पहुँचे। अध्यात्म–साधना के क्षेत्र में वे भी नागपंथ के ही अनुयायी थे। साधक गम्भीरनाथ उस समय निरवच्छिन्न ध्यान–जप एवं योगसाधना में निमग्न थे। सर्दी, धूप, वर्षा सहन करते हुए वे तपस्या में रत थे। शरीर की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं था। न मालूम क्यों, तरुण साधक मुकुटनाथ ने इस त्याग तितिक्षामय योगी के प्रति एक विशेष आकर्षण का बोध किया। इस समय से साधनारत गम्भीरनाथ की समस्त सेवा का भार उन्होंने साग्रह अपने ऊपर लिया।

गम्भीरनाथ जी क्रमशः योग साधना की गहनतम अवस्था में निमग्न होते जा रहे हैं। उनके अंतर में उस समय तीव्र व्याकुलता एवं अदम्य संकल्प था – योग सिद्धि की उच्चतम स्थिति पर उन्हें पहुँचना ही होगा। साधन गुफा के बाहर इस समय वे कदाचित् ही निकला करते थे। बाहर के लोगों के साथ मिलना जुलना तो दूर रहा, एकनिष्ठ सेवक मुकुटनाथ के साथ भी उनकी बहुत कम बातचीत हुआ करती थी। जिस दृढ़ संकल्प एवं एकाग्रता को लेकर वे योग – साधना के व्रती हुए थे, इस समय अनेकांश में वह सफल हो रही थी। एकनिष्ठ तपस्या के फलस्वरूप उनकी साधना सत्ता में असाधारण योग–शक्ति विकसित हो उठी।

झूसी की इस बालुकामय गुफा में गम्भीरनाथ ने लगातार 3 वर्ष व्यतीत कर दिये। इसके बाद प्रयाग छोड़कर उन्होंने नर्मदा की परिक्रमा करने का व्रत ग्रहण किया।

कठोर तपस्या के फलस्वरूप इस बार गम्भीरनाथ जी ने साधना की स्थिर भूमि प्राप्त की। इसके बाद उनके साधक जीवन में व्यापक पर्यटन का दौर आरम्भ हुआ। भारत के समतल और पहाड़ी प्रदेशों में सर्वत्र, जहाँ जो कुछ सुगम और दुर्गम तीर्थ है, एक–एक की उन्होंने यात्रा की। अपने परिव्राजक जीवन में उन्होंने विचित्र अनुभव प्राप्त किये और इस प्रकार के जीवन को कल्याणकर बताया। अपने शिष्यों से कहा करते थे, 'जान रखो, नित्य के जीवन के अभाव अभियोग, सुख–दुःख के सम्पर्क में आकर पर्यटन करने वाले साधक के भ्रम और संशय नष्ट हो जाते हैं – वैराग्य भाव सुदृढ़ होने पर उनकी देहात्म–बुद्धि भी क्रमशः नष्ट हो जाती है। पर्यटन का सबसे बड़ा लाभ यही है।'

परिव्राजक गम्भीरनाथजी एक बार कुछ समय के लिए गुरुधाम गोरखपुर लौटकर आये। इस बीच सिद्ध पुरुष के रूप में जन–समाज में उनकी अच्छी ख्याति हो गयी थी। उनके त्याग एवं तप की चर्चा भी साधु संतों में विशेष रूप से हुआ करती थी। प्रिय शिष्य को पुनः समीप पाकर गोपालनाथ जी को जिस प्रकार अपार संतोष हुआ उसी प्रकार आश्रमवासी भी अत्यंत आनंदित हुए। किंतु मठ के जन–कोलाहलपूर्ण वातावरण में गम्भीरनाथ जी बहुत दिनों तक नहीं रह सके। परम तत्त्व की प्राप्ति की आकांक्षा आज भी उनके जीवन में पूर्ण नहीं हुई थी। इसलिए एकांत में तपस्या करने के लिए यह साधक व्यग्र होकर पुनः बाहर निकल पड़े।

गया के निकट ब्रह्मयोनि पहाड़ है। इसके शिखर पर कपिलधारा नामक एक मनोरम

निर्जन स्थान है। परिव्राजक संन्यासी एक दिन इसी के समीप आकर रुक गये। यह स्थान ही क्या उनकी अभीष्ट–सिद्धि की निर्दिष्ट भूमि है? मानो सहसा किसी ने इस स्थान के साथ घनिष्ठ योग बंधन की बात उन्हें जना दी हो। एक अपूर्व प्रेरणा अंदर उदबुद्ध हो उठी और उन्होंने निश्चय कर लिया कि अपनी साधना की चरम सिद्धि के लिए इसी स्थान पर आसन लगाऊँगा।

स्थान का प्राकृतिक परिवेश बड़ा ही रमणीय था। तपोभूमि की पवित्रता मानो वहाँ के वायुमण्डल में ओत–प्रोत थी। तीन ओर तरु लता शोभित श्यामल पर्वत श्रेणी और एक ओर जंगल से होकर टेढ़ी–मेढ़ी पगडंडी। नीचे समीप में ही जंगल से घिरा हुआ कपिलेश्वर शिव का प्राचीन मंदिर। समस्त अंचल में एक आश्चर्यजनक निःशब्दता एवं शून्यता छाई हुई थी। दो एक साधनारत सन्यासियों को छोड़कर वहां स्थायी रूप में रहने वाला और कोई नहीं था। आस–पास के स्थान भी किसी समय साधना एवं तपस्या भूमि के रूप में पुनीत हो चुके थे। विष्णुपाद यहाँ से बहुत समीप ही था। बुद्ध एवं चैतन्य ने यहीं सिद्धि प्राप्त की थी। इस पुण्यमय परिवेश में ही गम्भीरनाथ जी की साधना परिपूर्ण सिद्धि की दिशा में अग्रसर हुई।

कपिलधारा के निर्जन पहाड़ी प्रदेश में गम्भीरनाथ की तपस्या की धारा उस समय निरवच्छिन्न भाव से प्रवाहित होने लगी थी। कभी उन्मुक्त आकाश के नीचे, कभी ब्रह्मयोनि पहाड़ की गुफा में साधक आत्म समाहित रहा करते। शीत, वर्षा, ग्रीष्म एक–एक ऋतु आती और उनके मस्तक के ऊपर से होकर चली जाती। किसी दिन भी ऋतु परिवर्तन की ओर उनका ध्यान नहीं गया। अविचल निष्ठा के साथ अध्यात्म–जीवन के एक–एक स्तर को वे पार करते जा रहे हैं।

इस समय गम्भीरनाथ जी ने अपने बाह्य जीवन में बहुत कुछ त्याग कर दिया था। कृच्छव्रती कौपीन धारी संन्यासी के पास एक कंबल, नारियल का खप्पर और योग दंड के सिवा और कुछ नहीं था। कोई संगी या केवल भी नहीं था। अंतर्मुखी योगी दिन–रात ध्यान में निमग्न रहा करते थे।

योग–क्षेम भी इस समय मानो भगवान के अदृश्य संकेत पर ही पूरा हो रहा था। गया के पड़ोस में अक्कू कुर्मी नामक एक व्यक्ति रहता था। वह बड़ा गरीब था। जंगल से लकड़ी काटकर शहर में बेचता और इसी से जीविका निर्वाह करता था। लकड़ी काटने के लिए उसे बीच–बीच में कपिलधारा के जंगल में जाना पड़ता था। वहाँ एक दिन गम्भीरनाथ जी की दिव्य मूर्ति उसने देखी।

दर्शन के साथ–साथ अक्कू के जीवन में एक परिवर्तन घटित हुआ। नवीन तपस्वी के चरणों में आत्म–समर्पण किये बिना वह नहीं रह सका। धुनी के लकड़ी एवं आग जुटाने का भार उसने स्वेच्छा से अपने ऊपर ले लिया। इसके साथ ही साधु बाबा के लिए फलाहार और दूध भी वह ले आया करता था। यह कठोरव्रती साधक कौन थे, कहाँ से आये थे, कैसे थे यह वह नहीं

जानता था किंतु उनकी सेवा परिचर्या के लिए वह व्याकुल रहा करता था। बाद में उसका भाई मुन्नी भी साधु बाबा का भक्त बन गया। इस प्रकार क्रमश: सारा कुर्मी परिवार ही साधु बाबा की सेवा में निरत हो गया।

सीधा-सादा अक्कू और उसके परिवार के अन्य लोग 'साधु-बाबा को ही अपना अभिभावक और हितैषी समझने लगे। दु:ख विपत्ति पड़ने पर बाबा के निकट अंतर का आवेदन पहुंचाकर अपने हृदय का भार वे हल्का कर लेते। अक्कू- परिवार के इस अपनापन, सेवा एवं त्याग को देखकर गम्भीरनाथ जी उसके प्रति एक सहज आत्मीयता के बंधन में आबद्ध हो गए। केवल इस समय में ही नहीं, बाद में चलकर भी देखा गया कि योगी की स्नेहपूर्ण दृष्टि बराबर इस गरीब परिवार पर निबध्द रहती थी। उनके भाव एवं आचरण को देखकर सब लोग यही समझने लगे थे कि इस दरिद्र कुर्मी परिवार के प्रति वे अपने को चिर ऋणी समझते थे।

इसके बाद गम्भीरनाथ जी के एकान्त सेवक के रूप में दो नए साधक देखे गए – नृपत्नाथ और सिद्धनाथ। गृहत्याग करने के बाद नृपत्नाथ सदगुरु की खोज में विभिन्न स्थानों में भटक रहे थे। ऐसे समय में ही सहसा एक दिन कपिलधारा में गम्भीरनाथजी से उनका साक्षात्कार हुआ उसी दिन इस सौम्य दर्शन योगी के चरणों में आश्रय ग्रहण करने के लिए वे कृतसंकल्प हुए। बाबा गम्भीरनाथ सहसा किसी को दीक्षा देने के लिए राजी नहीं होते थे। इसलिए उस दिन उन्होंने नृपत्नाथ के आवेदन को स्वीकार नहीं किया। फिर भी नृपत्नाथ उन्हें ही गुरु मानकर एकान्त निष्ठा के साथ उनकी सेवा करते रहे। ध्यान-मग्न योगी की दैनंदिन परिचर्या का भार इस समय से प्रधानत: उनके ऊपर ही पड़ा।

केवल गम्भीरनाथ की देह-रक्षा का भार ही नहीं, उनके साधन-मार्ग में किसी प्रकार की विघ्नबाधा नहीं हो, इस ओर भी नृपत्नाथ की सजग दृष्टि रहती थी। योगी वर के निर्विघ्न साधन-भजन में जिन वस्तुओं की आवश्यकता थी उन सबकी वे व्यवस्था करते हुए वे चारों ओर से उन पर पहरा देते थे। भयंकर भैरो वेष में सज्जितसेवक नृपत्नाथ को हाथ में त्रिशूल लिए प्राय: हिंसक जीव-जन्तुओं को भगाते हुए देखा जाता था। तीर्थ-यात्री कौतूहलवश गम्भीरनाथ जी की योग-साधना में विघ्न न डालें इस ओर भी नृपत्नाथ सतर्क रहा करते थे। उस समय भैरव वेश में नृपत्नाथ को देखकर बहुतों को ध्यान-मग्न योगी के सामने उपस्थित होने का साहस नहीं होता था।

गम्भीरनाथ के साधन-स्थल से कुछ नीचे खर्परभैरव नामक स्थान में नृपत्नाथ और बुद्धनाथ रहा करते थे। योगी की सेवा परिचर्या कर लेने के बाद दोनोंकपिलधारा से नीचे उतर आते और अपनी पर्णकुटी में विश्राम करते। इससे गम्भीरनाथ जी को एकांत में अपनी कठोर तपस्या में अग्रसर होने का सुयोग मिलता।

ब्रह्मयोनि पहाड़ की एकांत गुफाओं में दो – एक साधुतपस्वी स्थान-स्थान पर देखे जाते थे। धीरे-धीरे इन तपस्वियों में भी गम्भीरनाथ जी की योग-साधना की चर्चा फैलने लगी।

इसलिए वे कभी–कभी योगी के सम्मुख आ जाया करते थे। गम्भीरनाथ जी के समीप बैठकर साधनारत होने पर वे भी सहज ही गम्भीर ध्यान में डूब जाते थे। केवल ब्रह्मयोनि पहाड़ के आस–पास में ही नहीं, गया क्षेत्र में भी धीरे–धीरे इस महासाधक के योगैश्वर्य की ख्याति फैल गयी। कपिलधारा का दिव्य दर्शन एवं शक्तिमान 'महात्मा' की बात उस समय सब लोग जान गए थे।

गया के माधोलाल पंडा एक धनी व्यक्ति थे। संयोग से वे एक जटिल एवं विपज्जनक मामले में फँस गये। यदि वह मामला वे हार जाते तो उनके लिए दर–दर का भिखारी बनने के सिवाय और कोई चारा नहीं था और मामला का जैसा रंग–ढंग था उसमें उनके जीतने की तनिक भी आशा न थी। उनके सामने भविष्य अन्धकारमय दिखाई पड़ता था। विपन्न माधोलाल निरुपाय होकर गम्भीरनाथजी के शरणार्थी हुए और साश्रु नेत्रों से योगी–प्रवर के सामने अपना दुःख कह सुनाया। उनकी दुःख कथा से बाबा द्रवित हो गये। उन्हें सांत्वना प्रदान करते हुए प्रशान्त कंठ से बोले, ''चिंता मत करो। तुम्हारा भला ही होगा।''

अत्यंत अप्रत्याशित ढंग से माधोलाल वह मुकदमा जीत गये और इस प्रकार सर्वनाश होते–होते बचा। इसके बाद से वे गम्भीरनाथजी के एकांत भक्त हो गये और बराबर उनकी सेवा में संलग्न रहने लगे। अपने इस भक्त के साग्रह अनुरोध पर गम्भीरनाथ जी ने उन्हें कपिलधारा के साधन स्थल में एक योग गुहा और वेदी निर्माण करने की अनुमति प्रदान की। लगभग बारह वर्ष तक लगातार वहीं रहकर गम्भीरनाथ जी साधन भजन करते रहे।

योग–गुहा के भीतर के प्रकोष्ठ में गम्भीरनाथ दिनरात ध्यानमग्न होकर समाधिस्थ हो जाते। सेवकगण उस प्रकोष्ठ के बाहर थोड़ा सा दूध उनके लिए रख जाते। जब उनका ध्यान टूटता, आवश्यक होने पर गम्भीरनाथ केवल वही दूध पी लेते। इस प्रकार वहाँ अवस्थान करते हुए वे योग साधना की उच्चतर अवस्थाओं को एक–एक कर पार करने लगे।

● ● ●

क्रमशः

जो सब की दृष्टि से दूर एकान्त में भी ''भगवान देख रहे हैं'' इस भय से कोई अधर्म–आचरण नहीं करता, वही यथार्थ धार्मिक है। निर्जन वन में सुन्दर नवयुवती को अकेली देखकर भी जो धर्म के भय से भीत होकर उस पर कुदृष्टि नहीं डालता, वही यथार्थ धार्मिक है। जो वीरान में, किसी उजाड़ घर में मुहरों से भरी थैली देखकर भी उसे उठाने के मोह को रोक सकता है, वही ठीक–ठीक धार्मिक है। जो केवल दिखावे भर के लिए या लोग क्या कहेंगे इस भय से सिर्फ लोगों के सामने धर्म का अनुष्ठान करता है, उसे ठीक–ठीक धार्मिक नहीं कहा जा सकता। निर्जन, नीरव में अनुष्ठित होने वाला धर्म ही यथार्थ धर्म है, भीड़–भाड़ में, कोलाहल में अनुष्ठित होने वाला धर्म, धर्म नहीं।

– श्री रामकृष्ण परमहंस

नववर्ष 2013 के शुभावतरण पर त्रिभाषा-रचित

(संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी) में पद्यात्मिका स्वरचनायें

– द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

(संस्कृत भाषायाम्)

सर्वे निजैः कर्मभिरेव बद्धाः, फलं तदीयं प्रियमप्रियं वा।
भुञ्जामहेऽत्रैव न रमामहे किं, जुगुप्सिते कर्मणि भूय एव।।1।।

द्विष्मो वयं किं न प्रभो! भवद्भ्यः, विष्णो भवानेव विराजतेऽन्तः।
भूतेषु सर्वेषु तथापि कुर्मः, परोक्षभावेन भवन्निरादरम्?।।2।।

सुखं मृग्यमाणा वयं विस्मरामः, सुखं वर्धते तत्तु प्रदीयमानात्।
भवद्दयातः प्रभवेदियत् प्रभो, करवाणि कर्माणि तवार्पितानि।।3।।

यातं भवद्भ्यश्च नवीनवर्षे, कृपामियन्तामपि रोचते चेत्।
यो योऽपि पठितुं प्रयतेत विज्ञः, जीवेच्छतं सुतनुषा, दशासा सुमनसा।।4।।

(This is in Hindi Verses of Sanskrit Verses)

प्रभो! बंधे हम सभी कर्म द्वारा, शुभ या अशुभ कर्म-फल भोगते हैं।
"है कर्म कुत्सित" यह जानते भी, वही कर्म क्या हम न करते रहे हैं।।1।।

प्रभो! जानते, आप सब में विराजें, नहीं आपसे द्वेष हम कर रहे हैं।
हैं द्वेष करते किसी व्यक्ति से भी, निरादर न क्या आपका कर रहे हैं?।।2।।

रहे खोजते सुख, यही भूल जाते, सुख ही बढ़ेगा, सुख बाँटने पर।
है कामना हे प्रभो ! आपसे यह, करूँ कर्म भी आपको सामने कर।।3।।

नया वर्ष आया नयी याचना यह, स्वीकार मेरी प्रभो। यह भी कर लें।
रसज्ञ, मर्मज्ञ, सुविज्ञ जो पढ़े, मानी, धनी और शतायु हों वे।।4।।

May the New Year be a Blissful one

(This is in English Verses of Sanskrit Verses)

Tied are we with the actions performed,
And undergo consequently the results auspicious or otherwise
Knowing the actions contemptibility even,
We go on performing becoming unwise. (1)

We know O Lord! you are seated in one and all,
Showing hatred into one, do we not hate you O Lord!
Exhibiting hatred against anyone in person,
Do we not indirectly despise much the God. (2)

Sought for is happiness, but forget we,
Sharing pleasures multiplies the happiness.
I wish Lord! a boon from yourself,
Whatever should I do, may do experiencing your nearness. (3)

The New Year has dawned and again I beseech,
May this be accepted depending upon your benign Choice.
Be it gone through by anyone whosoever he be,
May beget the life's century, the honours, & wealth as its price. (4)

● ● ●

ओंकार के आश्रय से अमृत की प्राप्ति

'ॐ' यह अक्षर ही उद्गीथ है, यों समझकर इसकी उपासना करनी चाहिए ; क्योंकि यज्ञ में उद्गाता नामक ऋत्विज् 'ॐ' इस अक्षर का ही उच्चस्वर से गान करता है। उस ओंकार की व्याख्या की जाती है।

यह प्रसिद्ध है कि मृत्यु से डरते हुए देवताओं ने ऋक्, यजु: और सामरूप तीनों वेदों में प्रवेश किया–उनका आश्रय लिया। उन्होंने गायत्री आदि भिन्न–भिन्न छन्दों के मन्त्रों से अपने को ढक दिया–उन्हें अपना कवच बनाया। उन्होंने जो भिन्न–भिन्न छन्दों से युक्त मन्त्रों द्वारा अपने को आच्छादित कर लिया, इसी से वे 'छन्द' कहलाये। जो आच्छादन करे, वही छन्द–यह 'छन्दस्' शब्द की व्युत्पत्ति है।

जिस प्रकार मछली पकड़ने वाला धीवर जल के भीतर भी मछली को देख लेता है, उसी प्रकार देवताओं को मृत्यु ने उन ऋक्, साम एवं यजुर्वेद के मन्त्रों की ओट में भी देख– वहाँ भी उसने इनका पिण्ड नहीं छोड़ा। ये देवतालोग भी इस बात को जान गये; अत: ऋक्, साम और यजुर्वेद के मन्त्रों से ऊपर उठकर वे स्वर में अर्थात् ओंकार में ही प्रविष्ट हो गये।

जब कोई ऋक् का–ऋग्वेद के मन्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह नि:संदेह 'ॐ' इस प्रकार ही उच्चस्वर से उच्चारण करता है। इसी कारण साम को और वैसे ही यजुर्वेद को जानने वाला भी 'ॐ' का ही गान करता है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ है कि जो यह ओंकार रूप अक्षर अर्थात् उसका वाच्यभूत परमात्मा है, वही ऊपर बताया हुआ स्वर है; वही अमृत–मृत्यु से छुड़ाने वाला एवं भयरहित स्थान है। उसका आश्रय लेकर देवतालोग अमर और निर्भय हो गये। जो ओंकार को इस रूप में जानकर उसके अर्थभूतम अविनाशी परमेश्वर की स्तुति एवं उपासना करता है तथा एकमात्र इसी अमृतरूप, सर्वथा भयरहित एवं अविनाशी परमात्मा के स्वरूपभूत इस स्वर में प्रविष्ट हो जाता है–उसकी शरण में चला जाता है; वह उसमें प्रवेश करके उसी अमृत को प्राप्त कर लेता है, जिस अमृत को पूर्वोक्त प्रकार से देवताओं ने प्राप्त किया था।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2012-14 JANUARY 2013

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (गन्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके, न चेशिता नैव च तस्य लिंगम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो, न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/9)

जगत में कोई भी उस परमात्मा का स्वामी नहीं है, उसका शासक भी नहीं है और उसका चिन्ह विशेष भी नहीं है, वह सबका परम कारण तथा समस्त कारणों के अधिष्ठाताओं का भी अधिपति है। कोई भी न तो इसका जनक है और न स्वामी ही है।

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक:— योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक श्री. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (गन्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य श्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा